राजस्थान पुरातन ग्रन्थमाला

राजस्थानराज्य द्वारा प्रकाशित

सामान्यतः अखिलभारतीय तथा विशेषत. राजस्थानदेशीय पुरातनकालीन संस्कृत, प्राकृत, अपभ्रंश, हिन्दी, राजस्थानी आदि भाषानिबद्ध विविधवाङ्मयप्रकाशिनी विशिष्ट-ग्रन्थावली

प्रधान सम्पादक

फतहसिंह, एम. ए., डी. लिट्.

निदेशक, राजस्थान प्राच्यविद्या प्रतिष्ठान, जोधपुर

ग्रन्थाङ्क ९०

कवि हेमरतन रचित

गोरा बादिल चरित्र

(शोधपूर्ण पर्यालोचन सहित)

प्रकाशक

राजस्थान राज्याज्ञानुसार

निदेशक, राजस्थान प्राच्यविद्या प्रतिष्ठान

जोधपुर (राजस्थान)

१९६८ ई०

प्रधान-सम्पादकीय वक्तव्य

प्रस्तुत ग्रन्थ के दो भाग कहे जा सकते हैं, एक काव्य और दूसरा इतिहास। इसका काव्य-भाग पहले भी डॉ० उदयसिंह भटनागर द्वारा सम्पादित होकर छप चुका है, परन्तु प्रतिष्ठान से उसको पुनः प्रकाशित करने का कारण यह है कि प्रस्तुत प्रकाशन का आधार स्वयं ग्रन्थकर्ता द्वारा लिखित मूल प्रति है। परन्तु इस से भी अधिक महत्त्वपूर्ण ग्रन्थ का वह इतिहास-भाग है जो प्रतिष्ठान से भूतपूर्व सम्मान्य संचालक श्री मुनि जिनविजय द्वारा ग्रन्थ की भूमिका-स्वरूप प्रातःस्मरणीया महाराणी पद्मिनी तथा उनके पतिदेव रतनसिंह की ऐतिहासिकता को प्रमाणित करने के लिये प्रस्तुत किया गया है। श्री मुनिजिनविजयजी की यह एक ऐसी अभूतपूर्व कृति है जिसमे उनके स्वदेशाभिमान, इतिहास-मर्मज्ञता, शोधप्रवृत्ति, सूक्ष्मदृष्टि तथा समीक्षण-पटुता का अद्भुत परिचय तो मिलता ही है, परन्तु इसके साथ ही इस विद्वान् लेखक ने भारतीय इतिहास के एक अत्यन्त गौरवपूर्ण चरित को विदेशी इतिहासकारो तथा उनके भारतीय शिष्यों द्वारा विस्मृत अथवा उपेक्षित किये जाने के प्रयत्न से बचाने के लिये जो सफल प्रयास किया है, उससे इस देश के इतिहास को एक अपूर्व देन प्राप्त हुई है। श्री मुनि जिनविजयजी, ८० पृष्ठ की इस बहुमूल्य सामग्री के लिये, हमारी हार्दिक बधाई के पात्र हैं। यद्यपि इस प्रसग में संभवतः वे और भी कुछ लिखना चाहते थे, परन्तु मुझे खेद है कि मेरे निरन्तर प्रयत्न करने पर भी मैं पिछले ६-७ महीनो में इस दिशा में उनका अमूल्य सहयोग प्राप्त करने में सफल नही हो सका। साथ ही उनकी इस नवीन और अत्यन्त महत्त्वपूर्ण खोज को सुविज्ञ इतिहासकारो एवं स्वदेशाभिमानी लेखको के सामने शीघ्रातिशीघ्र पहुचाना प्रतिष्ठान का परम कर्त्तव्य समझ कर, मैं इस अवधि में इस बात का हार्दिक दुःख अनुभव कर रहा था कि इस सामग्री का मुद्रण २२-२-६७ में समाप्त हो जाने पर भी प्रतिष्ठान इस को प्रकाश में न लाने का जघन्य अपराध करता रहा है। इसीलिये, श्री मुनिजी महाराज से इस विषय में और अधिक लिखने की आग्रहपूर्वक प्रार्थना करते हुए भी, मैं यह ग्रन्थ इसी रूप में प्रकाशित करना अपना पवित्र कर्त्तव्य मानता हूँ।

अन्त में मैं श्री मुनि जिनविजयजी को उनकी इस महत्वपूर्ण ऐनिहासिक रचना के लिये, और उनसे भी अधिक बनेड़ा-निवासी बेरिस्टर श्री रविशकरजी देराश्री

तथा उनके सम्बन्धी प्रो. श्री सत्यदेव देराश्री को हृदय के गहनतल से धन्यवाद अर्पित करता हूँ जिनके माध्यम से प्रतिष्ठान को गोरा वादल पद्मिणी चउपई की वह मूल प्रति प्राप्त हुई जो श्रद्धेय लेखक के लिये एक अभूतपूर्व प्रेरणा-स्रोत वनी।

इस वक्तव्य को समाप्त करने से पूर्व गोरा वादल पदमिणी चउपई के यशस्वी लेखक हेमरत्न के विषय में इतना कह देना आवश्यक है कि वे सस्कृत के भी अच्छे लेखक थे और उनके द्वारा प्रणीत एक प्रश्नोत्तर-काव्य 'भावप्रदीप' प्रतिष्ठान में सगृहीत है और यदि यह सभव हो सका तो इसका प्रकाशन निकट भविष्य में किया जायेगा।

८-२-६८
जोधपुर

फतहसिंह

'गोरा बादल पदमिणी चउपई' विषयक एक पर्यालोचन

(ले० मुनि जिनविजय, पुरातत्त्वाचार्य)

चित्तौड की रानी पद्मिनी अथवा पद्मावती भारत के जनमानस मे एक विशिष्ट वीरागना और सती नारी के रूप मे शाश्वत स्थान प्राप्त कर चुकी है। विशाल भारत की विभिन्न देश-भाषाओं मे इसके विषय का विपुल साहित्य निर्मित हो चुका है। कथा, कहानी नाटक, उपन्यास एव काव्यो के रूप मे इसकी कथा भारत के कोने-कोने मे बहुत व्यापक और हृदयगम बनी हुई है ।

भारत के ऐतिहासिक युग की यह एक बडी रूपवती, बुद्धिमती और श्रेष्ठ सती नारी है। यह रामायण की सती सीता और महाभारत की द्रौपदी का सम्मिश्रित अवतार-रूप आर्य नारी का अद्भुत प्रतीक स्वरूप थी ।

'कालोऽस्मि लोकक्षयकृत् प्रवृत्त.' यह भगवद्गीता की उक्ति बताती है कि काल सदा लोकवृत्त का क्षय करने में प्रवृत्त रहता है। इसी काल के प्रभाव से पद्मिनी का तथ्यपूर्ण जीवनवृत्त भी क्षय की दशा को प्राप्त हो चुका है, अत इस विभूतिमती आर्य नारी के विशुद्ध एव सपूर्ण जीवनवृत्त के तथ्यभूत रूप मे उपलब्ध होने की आशा रखना व्यर्थ है।

भारत के प्राचीन इतिहास की प्रदर्शक साधन-सामग्री बहुत कम परिमाण मे उपलब्ध हैं। इस कारण भारत का व्यापक इतिहास अन्धकार-ग्रस्त है अथवा विलुप्त प्राय है, ऐसा मानना पडता है। हमारे पूर्वजो की विचारधारा भी इसका एक मुख्य कारण है । ससार के अनेकानेक प्राचीन मानव-समाज के विज्ञजनो ने अपने पूर्वजों के भौतिक जीवन को जिस तरह महत्व की वस्तु माना वैसे भारतीय विज्ञो ने नही माना। भारतीय विज्ञ मनुष्यो के जीवन का मुख्य लक्ष्य कोई पारलौकिक तत्त्व था। इसलिये जिस विशिष्ट व्यक्ति के जीवन मे कोई पारलौकिक तत्त्व प्रेरणा का आधार रहा उसके विषय मे तो उन्होने कुछ अर्थ-वाहक शब्द-सकलन के रूप मे उक्ति-विशेषो को ग्रन्थीबद्ध किया, जीवन के बाकी के स्वरूप को उन्होने उपेक्षा की दृष्टि से ही देखा। अन्यान्य मानव-समूहों मे पारलौकिक तत्त्व को महत्त्व देने वाली ऐसी कोई विशिष्ट विचारधारा नही थी, उनके जीवन मे केवल भौतिक सुख की प्राप्ति का ही मुख्य महत्त्व रहा।

इसलिये जिस किसी व्यक्ति ने विशेष रूप से भौतिक-सुख के साधन जुटाने में जो कुछ विशिष्ट प्रयत्न किया उसको उन समाजों के विज्ञ मनुष्यो ने अपनी वाणी मे सकलित रूप में शब्द-बद्ध करने के प्रयत्न किये। अतः अन्यान्य जातीय मानव समाजो के भूत-कालीन इतिहास के साधनों की जितनी विशेप सामग्री उपलब्ध होती है उतनी हमारे देश के इतिहास की नही। इसलिए उस प्राक्-ऐतिहासिक काल की बात तो दूर रही, भारतीय इतिहास का जिसे सुवर्ण-युग कहा जाता है उस मौर्य और गुप्तकाल के वारे मे भी हमारे यहा कोई ऐसा विशिष्ट साहित्य उपलब्ध नही है। इस प्रकार जव वडे-बड़े सम्राटो के जीवन के विपय मे हमे स्वल्पतर भी ऐतिहासिक सामग्री उपलब्ध नही है तो फिर पद्मिनी जैसी एक छोटे से राज्य के शक्तिहीन राजा की रानी के वारे मे विशेष ऐतिहासिक तथ्य वताने वाली सामग्री की उपलब्धि की आशा रखना निरर्थक ही है, तथापि पद्मिनी एक वडी भाग [illegible] जिसके विषय मे तथ्यातथ्य-विमिश्रित कुछ इतिहासाभासी साहित्यिक कृतिया उपलब्ध हो रही है।

हेमरत्न कवि कृत प्रस्तुत 'गोरा वादल पदमिणी चउपई', पद्मिनी-विपयक इन्ही कृतियो मे से एक विशिष्ट राजस्थानी भाषा की रचना है। यो तो अवधी भाषा मे मुसलमान सूफी कवि जायसी ने इसी पद्मिनी रानी की जीवन-कथा कहने वाली पदमावत नाम से एक बहुत ही सुन्दर और प्रौढ़-काव्यात्मक कृति की रचना की है जो प्रस्तुत 'पदमिणी चउपई' से कोई आधी शताब्दी पूर्व ही वनी है। जायसी की यह रचना हिन्दी-भाषा-साहित्य मे एक वहुत ही महत्व की और उत्कृष्ट कोटि की रचना मानी जाती है और इन पर, अनेक विद्वानो ने अनेक प्रकार के व्याख्यात्मक, विवेचनात्मक और आलोचनात्मक ग्रन्थ, प्रवन्ध, निबन्धादि लिखे हैं। जायसी ने इस रचना मे पद्मिनी का जो जीवनवृत्त आलेखित किया है वह केवल विशुद्ध कथा वर्णन स्वरूप नहीं है, परन्तु आलंकारिक भाषा मे महाकाव्य-पद्धति का है। जायसी कवि सूफी विचारधारा का अनुयायी था। उसका लक्ष्य हिन्दू जनता मे अत्यन्त लोकप्रिय और श्रद्धास्पद सती पद्मिनी की आवाल-गोपाल प्रसिद्ध लोक-कथा को सूफी विचारो और कल्पनाओ के रगो से रंजित कर पढने-सुनने वालो को अपनी साम्प्रदायिक विचारधारा की तरफ आकृष्ट करने का था।

पद्मिनी की कथा के अत्यन्त लोकप्रिय होने के अनेक कारण थे। वह अत्यन्त रूपवती और गुणवती श्रेष्ठ हिन्दू नारी थी। भारत मे प्राचीनकाल से जिसका विशिष्ट ऐतिहासिक और भौगोलिक महत्त्व रहा है वैसे विख्यात और समृद्ध तथा संस्कृति-परिपूर्ण चित्तौड दुर्ग उसकी राजधानी थी। भारत के प्राचीनतम

उत्तम राजवशो में से एक बहुत ही गौरवशाली गुहिलोत राजवश की वह राज-रानी थी। भारत के इतिहास में प्रलयकाल समान दिल्ली के महाम्लेच्छ दुष्ट-तम मुसलमान सुलतान अलाउद्दीन की उस पर क्रूर दृष्टि पडी थी। वह विषय-लोलुप, मदान्ध, धर्म-ध्वसक, हत्यारा, तुर्क मुसलमान भारत की हिन्दू जाति की उस सर्वश्रेष्ठ नारी का सतीत्व नष्ट कर उसे अपनी गुलाम बन्दिनी बनाना चाहता था; और, ऐसा करके वह हिन्दू जाति के धार्मिक और सास्कृतिक हृदयो का विदारण कर, उनको अपने कब्रिस्तानो मे दफनाना चाहता था। उसने इसके पूर्व ही इसी उद्देश्य से गुजरात के महासमृद्ध साम्राज्य को ध्वस्त कर दिया था, महाराष्ट्र के देवगिरि के महाराज्य को नष्ट-भ्रष्ट कर दिया था, राजस्थान के उत्तर पूर्वी सीमा के प्रबल रक्षक रणथम्भोर दुर्ग को भस्मसात् कर दिया था, वह हत्यारा अपने चाचा जलालुद्दीन की निर्मम हत्या करा कर उसके दिल्ली के सिंहासन को कब्जे कर[1], सारे भारत के राष्ट्रीय तीर्थ समान चित्तौड दुर्ग को धराशायी कर देना चाहता था और उसके गर्वोन्नत राजवश का विच्छेद कर उस युग की पद्मिनी नारी के पवित्र शील को भ्रष्ट कर अपनी अधमतम पाशवी-वृत्ति को परितुष्ट करना चाहता था। अलाउद्दीन बहुत महत्वाकाक्षी, विश्वास-घाती और अत्यन्त क्रूर प्रकृति का लड़ाकू योद्धा था। वह बहुत ही धनलोलुप और अधम एव लम्पट था। उसकी पहली बीबी स्वय उसके प्रतिपालक चाचा जलालुद्दीन सुल्तान की लडकी थी पर वह अपने दुश्चरित्र के कारण बीबी का दुश्मन-सा बना हुआ था। उसने अपनी लम्पटता के पोषण के निमित्त अनेक मुस्लिम और हिन्दू स्त्रियो के जीवन को भ्रष्ट किया था और जिस किसी हिन्दू राज्य को संपत्ति को वह हस्तगत करता था उसके साथ उन राजवशीय सुन्दर स्त्रियो के सतीत्व को भी नष्ट करता था। इसी कारण उसने देवगिरि के यादव राजा रामचन्द्र की सपत्ति लूटने के साथ उसकी सुन्दर कन्या छिताई को भी भ्रष्ट किया। गुजरात के राजा कर्ण की रानी कमला और उसकी पुत्री देवलदेवी की भी उसने क्रूर दुर्दशा की। रणथभोर के चाहमान वीर हमीर की पुत्री को भी उसने उसी प्रकार अपनी बन्दिनी बना कर उसे अपने नरकागार-सम हरम में डालना चाहा था, परन्तु वीर हमीर ने उसकी दुष्ट कामना को विफल करने के निमित्त स्वय अपनी रानियो के साथ पुत्री को पहले ही अग्नि-देव के शरण कर फिर, युद्ध मे अपने प्राणो की आहुति दे दी थी। इसी प्रकार की अधम आकाक्षा के वश होकर उसने चित्तौड पर भी आक्रमण किया था।

---

[1] अलाउद्दीन की कृतघ्नता और दुष्टता के लिए ये सभी कटु-विशेषण मुसलमान इतिहासकार बर्नी द्वारा दिए गए हैं—देखिए 'खलजी कालीन भारत', पृ० ३७–३८; ४०।

उसने सोचा होगा कि चित्तौड एक छोटा सा राज्य है, उसकी कोई बड़ी सैन्य-शक्ति नही है, वह दुर्ग सहज ही कब्जे मे आ जायगा और आसानी से भारत की उस श्रेष्ठ नारी को अपनी वन्दिनी वना कर उसे अपने घृणित हरम मे दाखिल कर अपनी क्रूर पाशवी-वृत्ति को संतुष्ट कर सकेगा। पर चित्तौड के मुट्ठी-भर वीरों ने उसके आक्रमण का डट कर सामना किया, महीनो तक उसे वहा पडा रहना पड़ा और अपने सैकड़ो चुनिंदा सैनिको के सिर कटवाने पड़े।[1] चित्तौड के वीरो की सख्या जव लड़ते-लडते समाप्त होने लगी तो फिर पद्मिनी ने अपने वीरो को आखिरी केशरिया वेप पहना कर, उनके मस्तको में अक्षत-चन्दन के तिलक लगा कर उन्हे विदा किया और स्वय अपने समस्त नारी-वर्ग को साथ लेकर, पद्मिनी-तलाव मे स्नान कर, भक्ति-पूर्वक भगवान् शिव की पूजा-अर्चना कर मगलमय गीत गाती हुई अग्नि-शय्या पर जा वैठी। क्षण भर मे उसका और उसकी सब सहगामिनी सती-नारियो के सुवर्णमय शरीर राख के ढेर मे परिणत हो गये। जिस तरह किले पर अग्नि की ज्वाला ठंडी हो गई उसी तरह उधर नीचे रण-भूमि मे वीरो की रक्तधारा भी बहती वन्द हो गई। किले के दरवाजे खुले पडे थे और राजघराने के महल सूने हो गए थे। अलाउद्दीन, जब किले पर पहुँचा तो, अपने दरबारी कवि अमीर खुसरो के सामने जो उसके साथ था, किसी 'हुद हुद' के लिए चिल्ला रहा था। पर उसे वहां कोई 'हुद हुद' नही दिखाई दिया। केवल राख के ढेर मे से राख की बारीक वारीक भुरको उड-उड कर उसकी क्रूर आखो में पड रही थी जिसके कारण वह अपना काला मुंह ढाकता हुआ और घृणित आंखें मलता हुआ हताश होकर खाली हाथ वापस दिल्ली को लौटा।

पद्मिनी की जीवन-कथा का वस इतना ही सारभूत तथ्य-वृत्त है और यह वृत्त इतना उदात्त और भावोत्तेजक है कि प्रत्येक हिन्दू सन्तान इसे सुन कर रोमाचित होती रही है। स्त्री-पुरुष, वाल-वृद्ध सभी इस कथा को सुन कर भाव-विभोर होते रहे हैं। हिन्दू जाति के अस्तित्व को नष्ट करने वाले उस प्रलय-काल समान दुर्दैवी युग में ऐसी एक आदर्श आर्य नारी हुई जिसने अपने सतीत्व और जातीय गौरव की रक्षा के निमित्त इस प्रकार प्राणो की आहुति दे दी कि जिसके कारण ससार मे आज तक हिन्दू जाति के गरिमाशाली गौरव की दिव्य-ज्योति का प्रतापी प्रकाश प्रदीप्त है।

पद्मिनी की कथा की ऐसी विशिष्टता से आकृष्ट होकर ही कवि जायसी ने

---

[1] खलजी कालीन भारत, पृ० ७६।

इसको अपने कथा-काव्य का मुख्य विषय बनाया और इसमे वह यथेष्ट सफल भी रहा। उसकी यह रचना, कथा की मुख्य नायिका की तरह ही अच्छी लोकप्रिय बन गई। जायसी की यह रचना पुरानी हिन्दी की अवधी बोली मे है, इससे इसका प्रचार उत्तर भारत में ही अधिक रहा। इसी बोली मे गोस्वामी तुलसीदासजी ने अपनी प्रसिद्ध रामायण की रचना की; परन्तु, रामायण का विषय एक तो बहु-विश्रुत और व्यापक है, दूसरा गोस्वामीजी सस्कृत भाषा के भी प्रकाण्ड विद्वान् थे, इसलिए उनकी रचना बहुत ही परिष्कृत और सस्कृत भाषा की शैली तथा भावो से ओतप्रोत है। जायसी स्वयं मुसलिम कवि था, उसके सस्कार और भाव इस्लामी सस्कृति मे ढले थे और वह फारसी-अरबी भाषा के साहित्य की परम्परा मे पला था, इसलिए उसकी रचना मे उसी के अनुरूप भावाभिव्यक्ति भी हुई है। तथापि कवि जायसी हिन्दुओ की विचार-प्रणाली, भावाभिव्यक्ति और साहित्यिक शैली से भी अच्छी तरह परिचित था, इसलिए उसकी रचना मे विशेष भेदभाव दृष्टिगोचर नही होता और इसीलिए वह हिन्दुओ के लिए भी वैसी ही सुग्राह्य और समादरणीय रचना हो गई।

जायसी के 'पदमावत' की तरह राजस्थान, गुजरात मालवा जैसे पश्चिम-भारत के प्रदेशो मे हेमरत्न कवि की प्रस्तुत रचना विशेष प्रसिद्ध रही। इसका रचयिता एक विद्वान् जैन यति है। इसकी भाषा सुपरिष्कृत राजस्थानी है, पर वह उस शैली मे रची गई है जो मारवाड, मेवाड, मालवा और गुजरात के प्रदेशो मे समान रूप से व्यवहृत होती थी। जैसा कि रचनाकार ने स्वय सूचित किया है, इसकी रचना सादडी नगर मे की गई है, जो मारवाड और मेवाड़ के सन्धिस्थल मे अवस्थित है इस रचना के मुख्य प्रेरक थे मेवाड के महाराणा प्रताप के अत्यत विश्वस्त राजभक्त, और देशभक्त, राजस्थानीय महाजनो के मुकुट-समान भामासाह के भाई ताराचद। सादड़ी नगर उस समय मेवाड़ राज्य की दक्षिण पश्चिमी सीमा का केन्द्रस्थान था। ताराचद वहा पर महाराणा प्रताप के शासन का एक विशिष्ट स्थानिक अधिकारी था। कवि हेमरत्न भामासाह और ताराचद के धर्मगुरुओ के शिष्य-समूह मे से एक प्रमुख व्यक्ति थे। हेमरत्न अच्छे कवि थे और जैन परम्परागत अनेक धर्म-कथाओ को उन्होंने अपनी देश-भाषा में ग्रथित किया था। इन कथाओ को जैन विद्वान् यति अपने धर्मोपदेश के समय सभा-जनो को सुनाया करते थे।

जैन यतियो का ऐसा उपदेश-क्रम प्रायः सदा चलता रहता है। इनका मुख्य निवास स्थान जैन उपाश्रयो मे होता है, जहा पर जैन महाजनो की ठीक सख्या होती है। बड़े गावो और शहरो मे एक से अधिक भी जैन यतिजनो के ठहरने

रहने के लिये उपाश्रय होते हैं। इन जैन-यति-वर्ग की भिन्न-भिन्न गुरु-परम्पराएं होती है। उन परम्पराओ के उपासक-वर्ग भी अलग-अलग होते हैं और ऐसा उपासक-वर्ग कही वडी संख्या मे हुआ तो उनका अपना उपाश्रय भी अलग होता है। इन उपाश्रयो मे आकर ठहरने वाले यति-जन अपनी परम्पराओ के मानने वाले उपामकवर्ग को सदा धर्मोपदेश सुनाते रहते है। श्रोतावर्ग मे स्त्री ,पुरुष आदि सभी होते है। यदि कोई विशिष्ट धर्मोपदेशक व्यक्ति आ जाता है और उसकी उपदेश-शैली अच्छी आकर्षक होती है तो व्याख्यान-सभा में जैन, जैनेतर आदि अनेक श्रोतागण आते रहते है। गावों के या नगरो के मुख्य राज्याधिकारी, जागीरदार, ठाकुर इत्यादि भी इनके उपदेश वडी श्रद्धा से सुनने आते है। वर्षा-काल के ४-५ महीने ये इस प्रकार एक स्थान मे रहते है, वाकी के समय यथा-वश्यक सदा परिभ्रमण करते रहते है।

राजस्थान के मध्यकालीन इतिहास-युग मे इन जैन-यतियो का समाज पर वड़ा प्रभाव था। ये विद्योपासक तो होते ही थे परतु, साथ में समाज की गति-स्थिति मे भी इनका वड़ा योग रहता था। उपासक-वर्ग के अतिरिक्त अन्य जनता भी इनके प्रति वड़ी श्रद्धा-भक्ति रखती थी। इसलिये इन यतिजनो को अपने देश और समाज की आन्तर-वाह्य सभी प्रकार की जानकारी होती थी। प्रसंगानुसार भिन्न-भिन्न देशो मे ये जाते-आते रहते थे इसलिये इनको उन-उन देशो का आन्तर-वाह्य स्वरूप भी अच्छी तरह ज्ञात रहता था। इनमें से वहुत से यति तो सस्कृत, प्राकृत भाषा के वड़े विद्वान् होते थे और काव्य, कोष, व्याकरण, छद, ज्योतिष, आयुर्वेद आदि शास्त्रो के मर्मज्ञ अभ्यासी और ग्रन्थकार भी होते थे। इन जैन-यतिजनो के रचे हुए सैकड़ो हजारो ग्रन्थ आज भी विद्यमान हैं। संस्कृत और प्राकृत तथा अपभ्रंश के उपरात इन्होने तत्कालीन अपनी देश-भाषा में भी वैसी ही असख्य रचनाएं गुंफित की हैं, क्योकि धर्म-गुरु होने के नाते धर्मोपदेश करते रहना इनका मुख्य जीवन-कार्य रहता था इसलिये अपने श्रोतावर्ग के लिये वैसी साहित्यिक रचनाएं भी निरतर करते रहते थे, जिसके श्रवण में सामान्य जनता को रुचि हो, और उसके द्वारा उनकी सस्कारवृद्धि हो। जैन-यतियों का यह धर्मोपदेश केवल जन-मन-रजन करने की दृष्टि से नही होता था अपितु उनका उद्देश्य धर्मो-पदेश द्वारा श्रोताओ को धर्म-मार्ग मे श्रद्धान्वित करना ही होता था। लोको मे दया, दान, शील, सदाचार आदि का प्रचार करना ही उनके धर्मोपदेश का मुख्य लक्ष्य रहता था। अपने इस उद्देश्य को अधिक रुचिकर वनाने के लिये ये 'नाना-प्रकार की धर्म-कथाओ और लोक-कथाओं का खूब उपयोग करते थे। लोको में

प्रचलित कथा-कहानियां, आख्यान, वार्ता आदि का आधार लेकर वे अपनी रचनाएं करते थे और उनको श्रोताजनों को सुंदर ढग से सुनाते रहते थे। इस प्रकार की रचनाए, जैसा कि ऊपर सूचित किया है, वे संस्कृत, प्राकृत, अपभ्रंश भाषाओ के अतिरिक्त सर्वजनगम्य प्रचलित देश-भाषा मे भी करते थे।

प्रस्तुत रचना के कर्ता कवि हेमरत्न ने भी इसी उद्देश्य को लक्ष्य कर इसकी रचना की है। हेमरत्न-कृत इस प्रकार की अन्य कई रचनाए उपलब्ध हैं, जिनमे 'अभयकुमार चउपई' और 'महीपाल चउपई' भी हैं, जो प्रस्तुत चउपई के पहले विक्रम सवत् १६३६ मे रचित प्राप्त होती हैं। बाद मे रची हुई 'शीलवती कथा' तथा 'लीलावती कथा', 'रामरासो', 'सीताचरित' आदि नाम की भी इनकी अन्य रचनाएँ उपलब्ध हैं। इससे ज्ञात होता है कि ये एक अच्छे कथाकार और कवि थे।

चित्तौड की रानी पद्मिनी या पद्मावती की कथा मूल घटना के समय से ही मालवा, गुजरात आदि प्रदेशवासी जनता मे बहुत लोकप्रिय हो गई थी और आबाल-वृद्ध जन-समूह मे सर्वत्र कही-सुनी जाती थी। राजस्थान से दूर पूर्व-भारत मे भी यह कथा खूब प्रचलित हो गई और इसी कारण जायसी जैसे मुसलमान कवि ने भी इसको अवधी भाषा में उक्त रूप से कवितावद्ध करने का सुन्दर प्रयत्न किया था। राजस्थानी मे शायद इससे पहले यह कथा इस रूप मे कवितावद्ध नही हुई थी इसलिए हेमरत्न कवि ने चउपई के रूप मे इसकी रचना की।

ऐतिहासिक दृष्टि से इस रचना का विशेष महत्त्व है। जैसा कि ऊपर सूचित किया गया है, यह रचना उदयपुर राज्य और राजवंश से विशिष्ट सम्बन्ध रखने वाले ओसवाल जाति के कावडिया गोत्रीय ताराचन्द के आदेश और अनुरोध से बनाई गई है। ताराचन्द जैसा कि ऊपर कहा गया है, भामासाह का छोटा भाई था। महाराणा प्रताप का वह विश्वस्त राज्याधिकारी था। भामासाह के साथ वह भी प्रसिद्ध हल्दीघाटी के युद्ध का एक अग्रणी योद्धा और सैन्य सचालक था। उसने चित्तौड के राजवश की रक्षा के निमित्त अनेक प्रकार से सेवा की थी, अतः उसके मन मे चित्तौड के गौरव की गाथा का गान करवाने का उल्हास होना स्वाभाविक ही था। कवि हेमरत्न विक्रम सवत् १६४५ मे सादडी नगर मे चातुर्मास करने निमित्त आये, तब ताराचन्द उस समय वहाँ पर बडे राज्याधिकारी के रूप में नियुक्त था। जैसी कि जैन-समाज की परम्परा है, ताराचन्द यथा-समय जैन उपाश्रय मे अपने धर्म-गुरुओ को वदन-नमन करने के लिए आता रहता था और उनका धर्मोपदेश भी सुनता रहता था। कवि हेमरत्न अच्छे कवि थे और वे धर्मोपदेश के समय अपनी रचनाओ

पर प्रवचन करते थे। ताराचन्द उनकी इन रचनाओं को सुन कर प्रसन्न होता था और प्रसग निकलने पर उसने कवि हेमरत्न को निवेदन किया कि वे चित्तौड के इतिहास की पद्मिनी-विषयक गौरवपूर्ण गाथा का भी अपनी कवितामयी वाणी मे गान करें। ताराचन्द की इस प्रार्थना पर हेमरत्न ने इस 'गोरा बादल-पदमिणी चउपई' की सुन्दर रचना करना शुरू किया जो सं० १६४५ के चातुर्मास के श्रावण सुदी पंचमी के दिन समाप्त हुई। इससे २८६ वर्ष पहले कथा की नायिका महारानी पद्मिनी का प्राणोत्सर्ग भी शायद श्रावण मास मे ही हुआ था।

प्रस्तुत चउपई के रचनाकाल से कोई २०-२१ वर्ष पहले ही अकबर द्वारा किए गए चित्तौड के सर्वनाश के दुःखद संस्मरण मेवाड की जनता के मानस को खिन्न बनाए हुए थे। केवल मेवाड का ही नही, सारे भारत का वह गर्वोन्नत दुर्ग ध्वस्त हो चुका था और वहा पर हिन्दू-सूर्य की तेजस्वी किरणों का प्रकाश म्लेच्छ रूपी राहु के आक्रमण से ग्रस्त हो गया था। उस अन्धकारमय समय में वहा पर सिंहो की गर्जना के स्थान पर दिन रात शृगालो की चिल्लाहट सुनाई देती थी। उस पवित्र दुर्ग का स्वामी वनराज राणा प्रताप अब मेवाड के उन पहाड़ो की कन्दराओ में जा बसा था जो उन शृगालो के अपवित्र शब्दो की चिल्लाहट से अस्पृष्ट थी। जो कोई ऐरे-गैरे शृगाल उन कन्दराओ मे घुसने का प्रयत्न करते थे तो उनका सफाया उस वनराज के साथी सिंह-शावक बड़ी चालाकी और चतुराई से करते रहते थे। चित्तौड के पतन के ११ वर्ष बाद, उन शृगालो की बडी फौज ने, इन पहाडो की कन्दराओ से घिरी हुई हल्दीघाटी में, वनराज को जा घेरा, परन्तु वनराज अपने इने-गिने सिंह शूरमाओ के साथ उन गीदडो पर ऐसा टूट कर पडा कि जिसके कारण उनको हल्दीघाटी के विषम जंगलो से भाग कर निकलना और भूख-प्यास से अपने प्राणो की रक्षा करना भी कठिन हो गया। उस हल्दीघाटी के युद्ध में ताराचन्द भी एक वीर योद्धा के रूप मे उपस्थित था। महाराणा प्रताप के उस सुरक्षित पहाडी प्रदेश का मारवाड और गुजरात के धोरी-मार्गों पर अवस्थित उक्त सादडी नगर एक बडा महत्त्व का नाका था। अर्वली के दुर्गम स्थानो और रास्तो का वह प्रवेश द्वार था। इसलिए उसकी रक्षा का भार महाराणा ने ताराचन्द को सौंपा था। उसी ताराचन्द के अनुरोध से उस सादडी नगर मे इस 'पदमिणी चउपई' की रचना हुई है, अतः इस रचना का यह ऐतिहासिक महत्त्व भी है।

कवि के कथनानुसार इस रचना के समय महाराणा प्रताप विद्यमान थे। उनका शौर्य-प्रताप दिन प्रति दिन बढ रहा था और उनका बुद्धिमान मन्त्री भामासाह स्वामिधर्म का पालन करता हुआ शत्रुओ के विध्वस मे व्यस्त था।

उसका भाई ताराचन्द भी अपनी मातृ-भूमि की रक्षा करने में इन्द्र के जैसा बलशाली होकर अपने देश के सब वैरियों को सीधा कर रहा था। ताराचन्द इस प्रकार चित्तौड़ के राजवंश का एक विशिष्ट स्वामिभक्त था, इसलिए उसके द्वारा स्वामिभक्ति का गुणगान करना-कराना स्वाभाविक था। चित्तौड़ की पद्मिनी की कथा में गोरा बादल की स्वामिभक्ति का बड़ा अनुपम उदाहरण है और उनके द्वारा चित्तौड़ के गौरव की अद्भुत रक्षा का वर्णन हुआ है। अतः इस कथा की कवि हेमरत्न द्वारा रचना कराना ताराचन्द का बहुत ही उदात्त और उत्तम आदर्श प्रकट करता है।

कवि हेमरत्न की यह 'पदमिणी चउपई' बहुत लोकप्रिय हुई। उसी समय इसकी अनेक प्रतिलिपिया हुईं और मारवाड, मेवाड, मालवा, गुजरात आदि प्रदेशो में इसका खूब प्रचार हुआ। इसके अनुकरण रूप में पीछे से अन्य कवियों ने भी इस कथा को अपनी कवित्व-शक्ति से अलंकृत किया। इनमे लब्धोदय कवि की बनाई हुई ऐसी ही एक 'पद्मिनी चरित्र चउपई' नामक रचना है, जो हेमरत्न की रचना के कोई ६०-६२ वर्ष बाद (संवत् १७०६-७ मे) बनी है। लब्धोदय भी कवि हेमरत्न की तरह विद्वान् जैन-यति थे। वे भी लोकप्रिय धर्म कथाओ को अपनी कविता मे गुम्फित कर धर्मोपदेश के समय उन पर प्रवचन किया करते थे। वे जैन यति-संप्रदाय के खरतर गच्छ नामक गुरु-परम्परा के यति थे। संवत् १७०६-७ मे उन्होने उदयपुर मे चातुर्मास किया। उस समय उनके गच्छ के अग्रणी ओसवाल ज्ञातीय कटारिया गोत्र वाले भागचन्द ने उनसे पद्मिनी चरित्र की कथा को चउपई के रूप मे गुम्फित करने का अनुरोध किया। भागचन्द का बडा भाई हंसराज उदयपुर की राज्य-सेवा मे था। वह महाराणा जगत्सिंह की माता जंबूवती का कार्यवाहक प्रधान था। भागचन्द का एक भाई डूंगरसी था जो धर्म-कर्म मे बडी आस्था रखता था। लब्धोदय ने इनकी प्रेरणा से 'पद्मिनी चरित्र चउपई' नाम की नूतन रचना की। हेमरत्न की रचना जब मुख्य करके दोहा और चौपई छन्द मे ग्रथित हुई हैं तब लब्धोदय ने अपनी रचना विविध प्रकार के देशी-रागो की गीतबद्ध शैली मे की है, पर इसकी कथा का मुख्य वर्णन हेमरत्न की रचना से ही लिया गया है। यह चउपई, बीकानेर के 'सादूल राजस्थानी रिसर्च इन्स्टीट्यूट' द्वारा हाल ही मे प्रकाशित की गई है। इसके साथ किसी प्राचीन मल्ल कवि कृत 'गोरा बादल कवित्त', तथा जटमल नाहर कृत 'पद्मिनी चरित्र' अथवा 'गोरा बादल कथा' नामक रचनाए भी प्रकाशित कर दी गई हैं।

जैसा कि ऊपर सूचित किया गया है—कालक्रम की दृष्टि से इन पद्मिनी

चरित्र विषयक कथा-कृतियो मे, मुसलमान कवि जायसी रचित पदमावत का प्रथम स्थान है, जो वि० स० १५९७ मे वनी है। उसके वाद दूसरा स्थान कवि हेमरत्न की प्रस्तुत 'गोरा बादल पदमिनी चउपई' का है। यह जायसी के वाद (सवत् १६४५ मे) ४८ वर्ष पीछे वनी है। तीसरी रचना लव्धोदय कृत 'पद्मिनी चरित्र चउपई' है, जो सवत् १७०६-७ मे हेमरत्न से ६०-६२ वर्ष वाद वनी है।

इनमे कविता की दृष्टि से जायसी की रचना वहुत ही उत्कृष्ट कोटि की है। हेमरत्न की कृति कथा-वस्तु का वर्णन वड़े रोचक ढंग से भावोत्तेजक शैली मे करती है। लव्धोदय हेमरत्न की ही वाणी का अनुसरण करता है।

हेमरत्न को पदमिणी चउपई के मूल सूत्र ये हैं—(१) चित्रकूट नाम के सुप्रसिद्ध और सुसमृद्ध दुर्ग का राजा गुहिलोत वंशी रतनसेन है (२) उसकी पटराणी प्रभावती है जो रूप में रभा के समान और शील में सती के समान है। (३) पत्नी वडी पतिभक्ता और स्नेहमयी है। (४) प्रसगवश किसी दिन राजा ने भोजन करते हुए रानी की रसोई-चातुरी में कुछ दोप वताया तो रानी ने उपहास-वश व्यग्य वचन कह दिया कि यदि मेरी रसोई पसन्द नही आती है तो किसी दूसरी पद्मिनी को परण लाओ। (५) राजा इसके व्यग्य वचन को सही करने के लिये किसी पद्मिनी स्त्री को व्याह लाने को राज्य से निकल पड़ा। (६) इधर-उधर परिभ्रमण करते हुए उसे किसी से सिंघल देश मे पद्मिनी राजकुमारी का पता लगा। (७) वह वड़े परिश्रम-पूर्वक सिंघल पहुंचा और वहां अपने कौशल से सिंघल के राजा की पद्मावती नामक पद्मिनी-लक्षण-सयुक्त राजकन्या के साथ लग्न कर उसे सम्मान के साथ चित्तौड ले आया। (८) वाद में, वहां पर एक राघवचेतन नाम का व्राह्मण व्यास राज दरवार में आता है और वह अपनी विद्या से राजा को प्रसन्न कर लेता है। (९) पर, एक अनुचित घटना-वश राजा के मन में उस व्राह्मण के चरित के विषय मे संदेह उत्पन्न हो जाता है, इससे वह उसको वहा से अपमान पूर्वक निकाल देता है। (१०) व्राह्मण कुपित होकर राजा के प्रति द्वेषभाव रखता हुआ उसका वैर लेने की भावना से दिल्ली के वादशाह अलाउद्दीन के दरबार मे पहुंच जाता है। (११) वहा पर भी अपनी तात्रिक-विद्या के कारण वादशाह को प्रसन्न कर लेता है और वादशाह की काम-लोलुपता को उत्तेजित करने के लिये वह चित्तौड़ के राजा की पद्मिनी रानी के अनुपम सौन्दर्य का वर्णन करता है। (१२) लम्पट वादशाह पद्मिनी को हस्तगत करने के लिये वड़ी सेना लेकर चित्तौड़ पर चढाई कर देता है। (१३) वहुत कुछ प्रयत्न और सघर्ष करने पर भी वल-पूर्वक वह चित्तौड़ का दुर्ग नही ले सकता है इसलिये छल-प्रयोग द्वारा राजा को भ्रम में डाल कर वह-

किला देखने के बहाने राजा का मेहमान बनता है। (१४) राजा अपने क्षत्रियोचित व्यवहार से उसका आतिथ्य करता है पर, वह विश्वासघाती सुलतान किले से उतरते समय राजा को कैद करवा कर अपने शिविर में ले जाता है। (१५) अलाउद्दीन राजा को बहुत कष्ट देता हैं जिसको देख-सुन कर चित्तौड़-निवासी सब ही बडे सकट में पड गये। किस तरह राजा को इस सकट से छुडाया जाय, इसके उपाय सोच रहे हैं। (१६) इतने में अलाउद्दीन ने अपने दूत को किले पर भेजा और कहलवाया कि 'यदि पद्मिनी रानी मुझे सौंप दी जाय तो मैं राजा को कैद से छोड दूगा और चित्तौड़ से चला जाऊगा।' (१७) राजा की पटरानी का पुत्र वीरभाण, जो अपनी विमाता पद्मिनी से द्वेष रखता है, वह अपने सरदारों से कहता है कि यदि चित्तौड़ की और राजा की रक्षा करनी है तो पद्मिनी को सुलतान के अधीन कर देने के सिवाय और कोई उपाय नही है। (१८) पद्मिनी के कानों पर यह बात जाती है तो वह बडी खिन्न होती है। एक तरफ चित्तौड का और अपने स्वामी के जीवन की रक्षा का प्रश्न है और दूसरी तरफ अपने सती-धर्म और कुल की मर्यादा की रक्षा का प्रश्न है। वह अपने जीवन की रक्षा की कोई चिन्ता नही करती। वह सोचती है कि 'मैं तो अपने प्राणो का क्षण भर मे त्याग करके अपने सतीत्व की रक्षा कर सकती हूँ। मैं जीते-जी तो कभी उस दुष्ट सुलतान के हाथो नही पडूगी, परंतु वैसा करने पर भी क्या मेरे स्वामी जीवित रह सकेंगे और चित्तौड़ का सर्वनाश होना रुक जायगा।' (१९) इसके बारे मे कुछ विचार-विनिमय करने के लिये वह, अपने विश्वासपात्र वीर राजपूत योद्धा गोरा रावत के घर पर जाती है। गोरा बडा वीर और पराक्रमी राजपूत है पर, किसी कारण से वह राजा रतनसेन से असन्तुष्ट होकर राज-दरबार से अलिप्त रहता है। वह राजमाता पद्मिनी के विचार सुन कर बहुत चिन्तित हो जाता है और किस प्रकार इस संकट का सामना किया जाय, इसका उपाय सोचता है। उसका एक भतीजा बादल युवा है जो बडा बुद्धिमान् और शूर-वीर भी है। गोरा उससे परामर्श करता है। दोनो काका-भतीजे एक अद्भुत छल-प्रयोग द्वारा राजा को कैद से छुडा लेने की योजना गढ़ते है। रानी पद्मिनी इसको सुन कर प्रसन्न होती है। (२०) तदनुसार वे दोनो योद्धा राज-दरबारियो से मिलते हैं और उनको अपनी योजना का रहस्य समझाते हैं। सब राज-दरबारी भी इससे सहमत होते हैं और तदनुसार सारी तैयारी करके, पद्मिनी के बहाने किसी सुन्दर सुभट को पालकी मे छुपा कर, उसके अनुरूप बड़ी सजधज के साथ सैकड़ो पालकियो का लवाजमा लेकर अलाउद्दीन के शिविर में पहुचते हैं। बादशाह इस जाल से सर्वथा अजान है और बड़ी

उत्सुकता के साथ पद्मिनी के स्वागत की प्रतीक्षा कर रहा है। (२१) गोरा और बादल राजा को चुपचाप सुभट की पालकी मे बिठा देते हैं और उसे किले की तरफ रवाना कर देते हैं। इतने ही मे इसका भेद खुल जाता है और सुलतान के शिविर मे भगदोड़ मच जाती है। 'दगा-दगा' की चिल्लाहट के साथ मारा-मारी और काटा-काटी शुरू हो जाती है। पालकियो मे छिपे हुए राजपूत सैनिक गोरा योद्धा के नेतृत्व में अद्भुत वीरता दिखाते हुए सैकड़ो का संहार कर देते हैं। गोरा वीर तो इस तरह वहां वीरगति को प्राप्त हो जाता है और वीर बादल राजा रतनसेन को किले मे ले आता है। (२२) सुलतान की सेना का बहुत संहार हो जाने से वह हताश हो कर दिल्ली लौट जाता है। इस तरह अद्भुत बुद्धिबल और पराक्रम से राजा रतनसेन और पद्मिनी रानी पद्मावती की रक्षा करने के कारण, बादल वीर का सर्वत्र जय जयकार होता है।

हेमरत्न के इस कथा-सूत्र में असंभवनीय घटना का किंचित् भी आभास नही है। सब घटना क्रमबद्ध और बहुत स्वाभाविक ढंग से वर्णित की गई है। स्थान-स्थान पर हेमरत्न ने अपने कथा-सूत्र के आधारभूत कई प्राचीन कवित्तों आदि का उल्लेख किया है, जो निःसदेह उसके पूर्ववर्ती कवियो की रचनाओ में से हैं।

इसके घटना-वर्णन में जायसी के वर्णन की तरह कोई भी प्रसंग असंगत, असम्बद्ध, असंभव और अस्वाभाविक नही लगता। इस रचना मे न कही अतिशयोक्ति है न कविता का आडवर है। उक्तिया बड़ी हृदयग्राहिणी और तथ्यानुसारिणी हैं। कवि राजस्थान के जन-जीवन की धर्मभावना का और मान-मर्यादा का प्रगाढ अनुभवी है। वह लोक-विश्रुत ऐतिहासिक प्रवाद को अपनी सम्मत और सद्भाव-प्ररूपक सरल भाषा मे कवितावद्ध करके अपने देशवासियों को सुनाना चाहता है, और वैसा करके वह अनेक मर्मान्तिक आघातों से मूर्छित जनता के प्राणो में चेतना का संचार करने वाला जीवन-रस उँडेलना चाहता हैं। वह कल्पना-भरे वाग्विलास के कामोत्तेजक मद्यानुकारी, काव्यरस के कटोरे पिला कर अपने श्रोताजनो की कुत्सित प्रशसा प्राप्त करना नहीं चाहता। इसलिए यह प्रेम की पीड़ा से पीड़ित प्राणियो के मन को बहलाने वाला प्रेमाख्यान नही है अपितु, संस्कारप्रिय और सद्धर्मानुरागी जनो के लिए स्वामिधर्म, शील, सदाचार और सात्विक गुण का उद्बोधक एक सरस सत्वाख्यान है।

जायसी केवल काव्य की दृष्टि से कथा का आलेखन करता है। उसके भावों मे आत्मीयता का आभास नही है। पढ़ने मे कविता का रस मिलता है, परन्तु चरित्रगत पात्रो के जीवन-चित्रण मे कोई निजत्व का सवेदन नही होता।

उसके वर्णन बड़े लंबे-लबे और उपमादि अलकारों से भरे पड़े हैं। कवि जैसे अपनी काव्य-शक्ति का प्रदर्शन करने बैठा हो वैसा उसकी रचना पढ़ने से आभास होता है। जायसी के कुछ वर्णन तो ऐसे मुसलमानी पुट देकर किये गये हैं कि जिनको सस्कारी धर्मनिष्ठ हिन्दू तो पढना सुनना भी पसन्द नही करेगा।[1] हेमरत्न की रचना सहज, अकृत्रिम हृदयंगम और भावोद्बोधक है। पद्मिनी और उससे संबधित राजा रत्नसेन, गोरा-बादल, राघवचेतन और अलाउद्दीन आदि सभी पात्रो का चित्रण, उन-उनके चरित्र और स्वभावानुरूप बहुत ही अनाडम्बर स्वरूप मे हुआ है। इसमें किसी प्रकार की कृत्रिमता का आभास नही होता है। ऐसा मालूम देता हैं कि हेमरत्न मानो अपनी आंखो देखी घटनाओ का अनुभूत तथ्य स्वरूप वर्णन कर रहा है। इस वर्णन मे एक प्रकार से उसका मानो निजी आत्मीय सम्बन्ध व्यक्त हो रहा है। वह चित्तौड के उस सकट के दु खद सस्मरणों का साक्षात् सवेदन अनुभव करता हुआ अपनी कविता को वाणी दे रहा है। जायसी, मात्र एक तटस्थ व्यक्ति की तरह केवल अपनी कविता-शक्ति को बतलाता है। चित्तौड़ के इस दु.खद इतिहास से उसका कोई अतरंग सवध नही है। उस दुर्घटना के साथ उसका तादात्म्य-भाव नही है। इस दृष्टि से हेमरत्न की यह राजस्थानी रचना, एक पुण्य पवित्र कथा की तरह पढने-सुनने लायक उत्कृष्ट कोटि की धर्म-कथा है।

इसमे भारत की एक श्रेष्ठ सती नारी के शीलव्रत का और सच्चे स्वामि-भक्त वीर राजपूत योद्धा के स्वधर्म-रक्षक उदात्त जीवन-व्रत का श्रद्धापूर्ण आलेखन है।

पद्मिनी की कथा हमारे देश और राष्ट्र के एक अत्यन्त दु:खद, संकटपूर्ण और विपत्तिजनक समय का हृदयविदारक स्मरण कराती है। पद्मिनी कल्पना-कल्पित केवल एक मनोरंजक कहानी की सामान्य नायिका नही है–वह हमारी सस्कृति-समृद्धि और गरिमा की वास्तविक ज्योति की प्रतीक-सी प्रज्वलित दीपिका थी, जो उस प्रलयकाल के प्रचण्ड अंधड़ मे स्वयं विलीन हो गई और संवत् १३६० मे चित्तौड़ के उस भस्मीभूत महादुर्ग में, अपने राष्ट्र, देश, धर्म और जातीय गौरव की रक्षा के निमित्त, सैकड़ो सती-सुन्दरियो के साथ, अग्नि की प्रचण्ड ज्वालाओ मे उसने अपनी आहुति देदी। इस प्रकार अपनी अनुपम आत्मबलि द्वारा उसने अपनी जाति की भावी सन्तति के लिए उक्त विनाश के

[1] जैसे रतनसेन द्वारा बादशाह की ज़ियाफत का (४५) 'बादशाह भोजखण्ड' का वर्णन आदि।

कठोर एव करुण क्रन्दन के साथ राष्ट्र गौरव के गर्वपूर्ण गंभीर गान का हृदयंगम सुर भी वह सुनाती गई। उसके ये सुर हमारे लिए दैवी प्रघोष हैं। यह प्रघोष विलासवृत्ति को उत्तेजित करने वाले शृंगार-प्रधान काव्य रस का विषय नही है। इस उदात्त प्रघोष की प्रतिध्वनि हेमरत्न के स्वधर्म और स्वराष्ट्र-भक्त-हृदय में गूज रही थी इसलिए उसने अपनी वाणी द्वारा इसे प्रस्तुत रचना मे व्यक्त की।

हेमरत्न वाग्विलासी कवि नही है। वह अपनी वाणी के विलास का प्रदर्शन करने की दृष्टि से पद्मिनी की चउपई नहीं बनाता है। वह संयमी यति है—जनता मे सयम और सदाचार का प्रसार करना उसको साहित्योपासना का एकमात्र लक्ष्य है। वह अपने देश और समाज की मान-मर्यादा का रक्षक सैनिक है, धर्मोपदेशक है; वह राष्ट्र के गौरव मे गर्वानुभव करने वाला कवि है और अपनी कविता द्वारा अपने देशवासियो को भी वैसा ही गर्वानुभव कराने की कामना रखता है। हेमरत्न की इस रचना को इसी दृष्टि से पढ़ना चाहिए और इसके उदात्त भाव को आत्मसात् करना चाहिए। जायसी के पदमावत के समान इसमे अनेक अप्रासगिक उपाख्यानों, विविध रसों, अलकारो, अन्योक्तियो, समासोक्तियों, उपमाओ इत्यादि से भरे शब्दसमूह रूपी छिलकों का चर्वण कर के उसके ऊपरी रस का आस्वादन करने में आनन्द और विलास का अनुभव करने की अनुपादेय आशा रखना उचित नही है।

जायसी पद्मिनी की वास्तविक आत्मा को नही जानता था। उसको उसके लोक-विश्रुत इतिहास का भी विशेष ज्ञान नही था। वह चित्तौड़ के राजा रतनसेन को चौहान मानता है क्योकि शायद उसने दिल्ली के मुसलमानो के साथ सर्वप्रथम सघर्ष करने वाले पृथ्वीराज चौहान के समान अलाउद्दीन के साथ लड़ने वाले चित्तौड़ के राजा को भी चौहान ही समझा हो। हिन्दू जनता में सर्वत्र प्रचलित और श्रद्धापूर्वक कही-सुनी जाने वाली पद्मिनी की कथा को अपनी कविता-शक्ति का प्रदर्शन करने के लिए एक अच्छा लोकप्रिय विषय समझा, इसलिए उसने पदमावत नाम से अवधी भाषा मे यह महाकाव्य-सा बड़ा ग्रन्थ रच डाला। इसकी रचना में उसने अपने लौकिक ज्ञान एव कवि-चातुरी का अच्छा प्रदर्शन किया परतु, अपनी रचना की काया को विशालता देने की दृष्टि से उसने इस कहानी में अनेक संबद्ध-असबद्ध, उपयुक्त-अनुपयुक्त, प्रासगिक-अप्रासंगिक आदि बातो और वर्णनो से इतनी जटिलता ला दी कि इसमें पद्मिनी का वास्तविक एवं मौलिक कथा-शरीर ही विलुप्त हो गया। मुख्यतया उसके कुछ हाथ-पैर उदरादि स्थूल अग ही इसमे दिखाई देते हैं। वह मुसलिम सूफी मत

का अनुयायी था इसलिए जगह-जगह उसने अपने संस्कारों का आरोप कथा के भावो मे भी गुम्फित कर दिया है। जैसा कि हमने ऊपर इगित किया है, जायसी का कथा के मूल मर्म के साथ कोई तादात्म्य नही था। वह केवल कवि था—कवि-सुलभ वर्ण्य विषय को शब्दो के आडबर से अलकृत कर उसने इस कथा-कलेवर को पहलवान के शरीर की तरह स्थूल बना दिया। इस स्थूलता से पद्मिनी के जीवनवृत्त की तात्विक एव तेजस्वी और तन्वी आकृति आछन्न हो गई। जायसी ने रतनसेन, पद्मिनी, अलाउद्दीन, गोरा-बादल, राघवचेतन जैसे वास्तिविक ऐतिहासिक व्यक्तियो को भी अन्यान्य कल्पित पात्रो के साथ शतरज के प्यादे के समान, एक ही चाल से चलने वाले कृत्रिम पुतले बना दिये। इससे पद्मिनी की तथ्यभूत दिव्यमूर्ति का अधिष्ठातृत्व ही नष्ट हो गया। आदि से अन्त तक पदमावत को पढने वालो को यही भास हो जाता है कि यह सारी की सारी कथा जायसी की कल्पना-प्रसूत है। शायद वह स्वय भी ऐसा ही मानता था और इसीलिए उसने अंत मे इसे एक रूपक-कथा कह दिया। जायसी सूफी सस्कारो के अनुसार इसे केवल एक प्रेम की कहानी मात्र मानता है और इसके अन्तर में छिपे हुए बीज को काव्यरस द्वारा सिंचित कर उसको अकुरित करना चाहता है। इसीलिये हिन्दी भाषा के साहित्य मे पदमावत एक अद्‌भुत प्रेमाख्यान के रूप मे प्रसिद्धि प्राप्त कर सका है।

हिन्दी-साहित्य के अनेक विद्वान् इस प्रेमाख्यान पर मुग्ध हैं। अनेक विद्वानो ने इस पर विवेचनात्मक ग्रन्थ, प्रबन्ध, निबन्ध आदि लिखे हैं। पदमावत पर कई टीका, टिप्पण, व्याख्या आदि भी लिखे गए हैं। इसमे कोई शक नही कि पदमावत हमारी देश-भाषा का एक उत्तम काव्य है और कविता के प्रेमियो को उसके अध्ययन-मनन मे विशेष प्रेमरस की अनुभूति भी होती होगी।

जायसी स्वय ही इस बात को अपने शब्दो द्वारा व्यक्त करता है कि—मैंने इस प्रेम-कथा को जोड कर, कविताबद्ध कर लोगो को सुनाया है। जिसने भी इस प्रेम-कथा को सुना है उसने प्रेम की पीडा के महत्त्व का अनुभव किया है—इत्यादि। सो इस प्रकार जायसी की पद्मिनी कथा केवल प्रेम की पीडा को अभिव्यक्त करने वाली एक रूपक-कथा मात्र है। इस कथा का मर्म कोई वास्तविक अर्थ नही रखता।

पर, जैसा कि ऊपर दिये वर्णन से ज्ञात होता है, हेमरत्न ने भी इसी पद्मिनी की लोक-कथा को कविता-बद्ध किया है, परतु उसने इसे कोई प्रेम की कहानी नही बताई—वह तो इसे आदर्श हिन्दू नारी के पवित्र शील को और सती-धर्म की रक्षा सूचक सच्ची कहानी मानता है; वह इसे स्वदेश और स्व-

धर्म के रक्षक और पोषक वीरत्व की गाथा समझता है। हेमरत्न की यह रचना हमारा एक राष्ट्रीय गीत है। यह गीत हमारे राष्ट्र के उस सर्वनाशी सकटकाल के मर्मान्तक एव करुण-नाद की आसू लाने वाली दुःखद धुन भी सुनाता है और उस कराल-काल मे भी राष्ट्र के गौरव की रक्षा के निमित्त शौर्य के मद मे मस्त होकर हँसते, नाचते और गाते हुए अपने प्राणो की आहुति देने वाले वीर और वीरागनाओ की हुंकारो से गूंजती हुई रोमांचक धुन भी सुनाता है। हेमरत्न ने जिस प्रकार पद्मिनी की कथा वर्णित की है प्रायः उसी प्रकार उसके समकालीन मुसलमान इतिहास-लेखको ने भी उस घटना का वर्णन किया है।

पर, जायसी की असबद्ध और अप्रासगिक बातों से लदी हुई पद्मिनी की कहानी के प्रकाश मे आने पर अनेक पाठको को उसकी तथ्यता पर शंका होने लगी और ऐतिहासिक जिज्ञासुओ ने उसके बारे में ऊहापोह शुरू किया। भारत के प्राचीन इतिहास को शका की दृष्टि से देखने वालो को जायसी से पूर्ववर्ती, पद्मिनी की कथा का कोई विश्वसनीय स्रोत ज्ञात नही हुआ। अतः उन्होने यह मत बनाया कि पद्मिनी की यह कथा जायसी की ही कल्पना मात्र है, इसमे कोई ऐतिहासिक तथ्य नही है। अलाउद्दीन ने चित्तौड़ पर आक्रमण कर उसके हिन्दू राजा को नष्ट कर दिया और चित्तौड़ को अपने इसलामी झडे के नीचे रख दिया। इसका उल्लेख अलाउद्दीन के स्वय के दरबारी लेखको ने किया है और उनमे सबसे मुख्य प्रसिद्ध लेखक अमीर खुसरो है। अमीर खुसरो स्वय चित्तौड़ के आक्रमण वाले प्रसंग पर अलाउद्दीन के साथ था। उसने उस लड़ाई के वर्णन मे वहा के राजा रतनसेन और रानी पदमावती या पद्मिनी का किंचित् भी उल्लेख नही किया। पिछले अकबर-कालीन मुसलमान इतिहास लेखको ने, जिनमे फरिश्ता और अबुल फज्ल आदि हैं, पद्मिनी की घटना का वर्णन किया है, परंतु वे जायसी के बाद हुए हैं, अतः उनकी कथा का मुख्य आधार जायसी का पदमावत ही है। उसी के आधार पर पीछे से हिन्दू कवियो ने भी पद्मिनी की कथा को प्रचारित किया-इत्यादि। इस विचार के मुख्य प्रचारक हैं प्रसिद्ध इतिहासवेत्ता बंगाली विद्वान् डॉ० कालिकारंजन कानूनगो[1]। डॉ० कानूनगो ने अपने विचारो की पुष्टि में कुछ तर्क दिये हैं। एक तो यह कि अलाउद्दीन के समकालीन इतिहास लेखको ने पद्मिनी-विषयक कोई उल्लेख नहीं किया। दूसरा तर्क जायसी के पहले की पद्मिनी-विषयक कोई रचना

[1] देखिए Studies in Rajput History-Kalika Ranjan Qanungo (स्टडीज इन राजपूत हिस्ट्री कालिकारजन कानूनगो), १९६०

नही मिलना है। तीसरा तर्क यह है कि पिछले भाट-चारणों ने जो पद्मिनी की कथा कही है उसमें परस्पर विसवाद और कालक्रम का असबद्ध उल्लेख है। भाट-चारणो की बातों के आधार पर सब से पहले कर्नल जेम्स टॉड ने अपनी प्रसिद्ध रचना 'राजस्थान का इतिहास' (Annals & Antiquities of Rajasthan) नामक पुस्तक मे पद्मिनी की घटना का वर्णन लिखा, जिसमें उसने पद्मिनी के पति का नाम भीमसिंह लिखा है। मुहता नैणसी की ख्यात में रतनसी को अजैसी का पुत्र लिखा है। चित्तौड के राजाओ के नामों में भीमसी या रतनसी का कोई पता नही है। अतः यह पद्मिनी केवल जायसी की कल्पना-प्रसूत चित्तौड़ की रानी है। इसमे कोई ऐतिहासिक तथ्य नही है, इत्यादि।

डॉ० कानूनगो जैसे विचारको का प्रतिवाद करने वालों में राजस्थान के सुप्रसिद्ध इतिहासज्ञ डॉ० दशरथ शर्मा मुख्य हैं। इन्होने कुछ विशिष्ट ऐतिहासिक प्रमाणो के आधार पर पद्मिनी की कथा को ऐतिह्य-तथ्य-प्रमाणित करने का प्रयत्न किया है। बीकानेर से प्रकाशित उक्त लब्धोदय कवि रचित पद्मिनी चउपई के प्रारंभ में—'रानी पद्मिनी – एक विवेचन' इस नाम से डॉ० शर्मा लिखित छोटा-सा परंतु सारभूत लेख प्रकट हुआ है। इसमें डा० शर्माजी ने डॉ० कानूनगो के तर्को का उत्तर देते हुए सूचित किया है कि—अलाउद्दीन के समकालीन लेखको का पद्मिनी का जिक्र न करना कोई प्रबल प्रमाण नही है। उन लेखकों ने अनेक ऐसी बातों का उल्लेख नहीं किया जो अन्यान्य प्रमाणो से ज्ञात हैं। किसी लेखक के वर्णन मे किसी घटना का न पाया जाना ऐतिहासिक तर्क नही। फिर, अमीर खुसरो के कुछ उल्लेख ऐसे हैं जिनमें पद्मिनी-विषयक घटना का आभास मिलता है।

दूसरा तर्क यह है कि जायसी के पहले का पद्मिनी के अस्तित्व का सूचक कोई ऐतिहासिक स्रोत नहीं मिलता, वह भी ठीक नहीं है। जायसी के पहले की 'छिताई वार्ता' (स० १५८३) में रतनसेन, पद्मिनी, गोरा-बादल और चित्तौड़ की घटना का स्पष्ट उल्लेख है।

किसी अज्ञात कवि, भाट या चारण के बनाए हुए गोरा-बादल-चरित विषयक कवित्त उपलब्ध हुए हैं, जो भाषा की दृष्टि से जायसी के पूर्ववर्ती ज्ञात होते हैं। राजा रतनसिंह का चित्तौड में स० १३५९ का स्पष्ट शिलालेख मिला है, जिससे उसका उस समय वहा राजा होना निश्चित है, इत्यादि।

इन तर्कों के आधार पर डॉ शर्माजी का यह प्रामाणिक मत है कि 'जायसी' के पद्मावत से पूर्व ही पद्मिनी की कथा और अलाउद्दीन की लम्पटता पर्याप्त प्रसिद्धि प्राप्त कर चुकी थी; जायसी ने पद्मावती, रत्नसेन और बादल का

सृजन नही किया। ये जन-मानस में उससे पूर्व ही वर्तमान थे[1], इत्यादि।

हेमरत्न की प्रस्तुत 'पदमिणी चउपइ' का अध्ययन करने पर विश्वास होता है कि डॉ. दशरथ शर्मा का अभिमत विशेष संगत और सत्य-पोषक है।

हमारे खयाल से विद्वद्वर्य डॉ. कानूनगो की यह कल्पना तथ्यपूर्ण नही है कि जायसी के पहले का पद्मिनी की कथा का कोई आधार नहीं है और यह केवल जायसी की कल्पना-प्रसूत है। हेमरत्न की प्रस्तुत रचना के अवलोकन से ज्ञात होता है कि पद्मिनी की यह कथा राजस्थान मे परा-पूर्व से प्रसिद्ध रही है। इस कथा के अनुसंधान में कुछ प्राचीन कवित्त जो उद्धृत किए गये हैं वे इस बात का स्पष्ट प्रमाण हैं कि पद्मिनी-विषयक कथा-ज्ञापक कवित्त आदि राजस्थान में प्राचीन काल से प्रचलित थे। कवित्त, छप्पय, दोहा, सोरठा आदि मुक्तक पद्य राजस्थान के इतिहास और लोकजीवन के बीजक रहे हैं। इन बीजको के आधार पर राजस्थान का प्राचीन इतिहास जन-मानस मे अपना स्थायी स्थान बना रखता था। इन्हीं बीजको के आधार पर कथाकार, वार्ताकार आदि विज्ञ-जन लोगो को अपनी जानी-सुनी कथा-कहानियाँ, बात-स्यात आदि कहा करते थे और यह क्रम परा-पूर्व से सर्वत्र चला आता था। इनमें जो कोई कवि विशेष प्रतिभा वाले व्यक्ति होते थे वे इन कथा-बीजको के आधार वाली कथा-वार्ताओ को कविता-बद्ध भी कर लेते थे। पद्मिनी की कथा को भी इसी तरह मौखिक कथाकार, रास, भास, प्रबन्ध, चउपई आदि रूप मे स्थानिक लोगो के सम्मुख एक वीर-शौर्य और सती-धर्म की महत्ता बतलाने वाली कथा के रूप मे सुनाया करते थे। कवि लोग कविता के रूप मे निबद्ध कर उसे एक स्थायी और अधिक व्यापक स्वरूप दे देते थे। जायसी, हेमरत्न आदि कवि इसी प्रकार पद्मिनी की कथा को स्थायी स्वरूप देने वाले कवि हैं। जिस प्रकार जायसी ने किन्हीं बीजको के आधार पर अपनी पद्मावत कथा की रचना की उसी प्रकार हेमरत्न ने भी ऐसे ही किन्ही बीजकों के आधार पर अपनी रचना की है। अतः यह कल्पना नितान्त भ्रमपूर्ण है कि जायसी की रचना ही पद्मिनी कथा का मूलाधार है। हेमरत्न की इस रचना मे जायसी की किंचित् भी छाया नही है। केवल ५० वर्ष पहले होने वाले, पूर्व के दूर प्रदेश मे रहने वाले, अवधी जैसी एक स्थानीय भाषा में रचना करने वाले तथा धर्म, और जाति से सर्वथा भिन्न व्यक्तित्व वाले, कवि की रचना का, राजस्थान में रहने वाले धर्म-प्रिय और राष्ट्रभक्त जनों में प्रसिद्धि प्राप्त कर लेना किसी प्रकार सम्भव नही

[1] 'पद्मिनी चरित्र चोपाई'—पृ० १७ (प्रका० सादूल राजस्थानी रिसर्च इन्स्टीट्यूट, बीकानेर) वि० स० २०१८

माना जा सकता और यही कारण है कि राजस्थान के किसी भी पुराने शास्त्र-संग्रह में इसकी कोई लिखित प्रति ज्ञात नही है। जैन विद्वान् यति जो उस समय दिल्ली, पंजाब, विहार और बंगाल आदि के पूर्व और उत्तर प्रदेशो मे भी यथेष्ट विचरण करते रहते थे और साहित्य का सकलन, आकलन आदि निरंतर करते रहते थे, यदि उनकी जानकारी मे जायसी की यह रचना आती तो वे अवश्य इसकी प्रतिलिपि आदि कर लेते। क्योकि यह रचना केवल अन्यान्य मुसलिम कवियो द्वारा रची गई सामान्य लोक-कथा के स्वरूप की नही है अपितु यह तो राजस्थान के इतिहास की एक विशिष्ट कथा है, जो जैन यति-जनों और कवियो के लिए प्रिय और स्वीय वस्तु है।

अतः हेमरत्न को जायसी की पद्मावत की कोई जानकारी नही थी। हेमरत्न ने राजस्थान में परापूर्व से लोक-विश्रुत कथा-बीजकों के आधार पर अपनी यह स्वतंत्र रचना की है। कवि स्पष्ट कहता है कि 'सुणिउ तिसउ भाष्यउ सवधि' अर्थात् मैंने जैसा सुना है वैसा सबध यहां कहा है। यदि जायसी की कथा उसकी कथा का आधार होती तो वह कह देता कि 'मैंने पूर्व-रचित या ग्रथित कथा के आधार से यह रचना की है।' उक्त लब्धोदय कवि ने जिसने वि० स० १७०७ में 'पद्मिनी चरित्र चउपई' उदयपुर मे बनाई है उसने स्पष्ट अपनी रचना के प्रारभ में कहा है कि, मैं यह कथा "कल्लोल पूर्वक पूर्व-कथा को देख कर कहूगा"—"कहिस्यु कवित्त कल्लोल सु पूर्व कथा सपेख"।

जायसी ने अपनी रचना को बडी आडबर वाली और अनेक कथाओ का एक जाल सा बना दिया है। उसके कथाजाल का हेमरत्न की कथा मे किंचित् भी आभास नही है। हेमरत्न की कथा सीधी घटना-वर्णनात्मक है। इसमें राजा राजा रतनसेन और अलाउद्दीन के सिघल जाने का जो वर्णन है वह कुछ असबद्ध और अनैतिहासिक-सा अवश्य लग रहा है, बाकी सारा वर्णन सुसबद्ध और ऐतिहासिक स्वरूप का है। कवि प्रारम्भ में ही कहता है कि 'मैं सच्ची कथा कहूगा और उसमें कोई खोड़ अर्थात् असत्य नही होगा'—'केळवस्यु साची कथा, काणि न आवइ कांइ"।

बीकानेर से प्रकाशित लब्धोदय के "पद्मिनी चरित" में उसके संपादक श्री भँवरलालजी नाहटा ने किसी मल्ल कवि रचित 'गोरा बादल कवित्त' नामक प्राचीन कवित्तों की सग्रहात्मक एक रचना भी प्रकाशित की है। यह 'गोरा-बादल कवित्त-सग्रह' अवश्य ही हेमरत्न से प्राचीन है क्योकि इनमें से कई कवित्त हेमरत्न ने अपनी रचना मे उद्धृत किए हैं। अतः स्वत. सिद्ध है कि हेमरत्न से पूर्व ये कवित्त सुप्रसिद्ध थे। इन कवित्तो की रचना के समय का कोई ज्ञापक निर्देश

नही मिला, तथापि इनकी भाषा व रचना-शैली से इतना तो ज्ञात होता है कि ये जायसी के समय से तो पूर्ववर्ती अवश्य हैं। ये कवित्त मुख्य करके गोरा बादल की वीरता की प्रशंसा में रचे गए हैं। इनके अतिरिक्त भी हेमरत्न ने प्रसगोचित कई अन्य प्राचीन कवित्त उद्धृत किये है जो उक्त सग्रह मे नही हैं। इससे यह भी निश्चित होता है कि हेमरत्न से पहले भी ऐसी कई फुटकर कवित्तादि रचनाएं विद्यमान थी जो पद्मिनी की कथा से सम्बन्धित थी। हेमरत्न ने इन रचनाओ को अच्छी तरह देखा है और उसने यथाप्रसग इनका आधार अपनी रचना मे लिया है। इन उद्धृत कवित्त छन्दो मे से कई तो भाषा की दृष्टि से भी बहुत प्राचीन मालूम देते हैं और उनके अनेक पाठभेद भी मिलते हैं, अतः उनका प्रचार बहुत समय से हो रहा था, यह भी स्पष्टतया सिद्ध होता है।

इस प्रकार हेमरत्न की प्रस्तुत चउपई के अध्ययन के आधार पर हम यह कह सकते हैं कि पद्मिनी की मूल कथा राजस्थान मे जायसी के पहले बहुत समय से प्रचलित थी। इससे यह कल्पना कि जायसी ने ही सबसे पहले पद्मिनी की कल्पित कथा का सृजन किया, सर्वथा निर्मूल सिद्ध होती है।

हमारे विचार से टॉड द्वारा भाट, चारणो से सुनी बातो पर भीमसी को पद्मिनी का पति लिखने आदि का कारण उसको विशेष प्रामाणिक आधारो का न मिलना ही है। भाटो की बातो के आधार पर पद्मिनो के पति के नाम का तथा ऐतिहासिक तथ्यो का मेल मिलाना संगत नही है। यदि कर्नल टॉड को हेमरत्न की इस राजस्थानी रचना का ज्ञान होता तो वह भीमसी का नाम कदापि न लिखता।

इस कथा मे वर्णित राघवचेतन भी एक ऐतिहासिक व्यक्ति था। वह एक तांत्रिक व बड़ा अफण्डी ब्राह्मण था। अपनी तन्त्र-विद्या से उसने देवगिरि के राजा रामदेव, चित्तौड़ के राजा रतनसेन और दिल्ली के सुलतान अलाउद्दीन तक को आकृष्ट कर लिया हो तो कोई ऐसी आश्चर्य की बात नही है। इसका उल्लेख केवल पद्मिनी की कथा में ही नही मिलता अपितु अन्यान्य प्रसगों मे भी मिलता है। देवगिरि से संबद्ध छिताई की वार्ता में भी वह, पद्मिनी की वार्ता की तरह, विशेष रूप मे वर्णित है। तदुपरान्त उसकी जादूगीरी को लक्ष्य कर जैन ऐतिहासिक प्रबन्धो मे भी उसका उल्लेख हुआ है। जैनाचार्य जिनप्रभसूरि अलाउद्दीन के दरबार मे गये थे। वहाँ पर वह जिनप्रभसूरि के साथ तन्त्र विद्या के प्रभाव का प्रदर्शन करता हुआ बताया गया है। जिनप्रभसूरि बड़े विद्वान् व प्रभावशाली पुरुष थे। अलाउद्दीन व उसकी गद्दी पर बैठने वाले महमूद तुग़लक के दरबार मे वे उपस्थित हुए थे। उनके शिष्यो में से

किसी ने उनका जीवन-प्रबन्ध प्राकृत-भाषा मे लिखा है।[१] उस प्रबन्ध मे राघव-चेतन की जादूगीरी का उल्लेख किया गया है। इसी तरह कुछ दिगम्बर जैन सम्प्रदाय की पट्टावलियों मे भी इसका उल्लेख मिलता है। ये उल्लेख भिन्न-भिन्न प्रसगो का वर्णन करने वाले हैं। अतः उसका अलाउद्दीन का समकालीन होना सिद्ध होता है और वह ऐसे कामो के लिये देश में मशहूर हो रहा था, यह भी उसके उक्त प्रकार के उल्लेखो से स्पष्ट हो जाता है। राघवचेतन विद्वान् था और उसके रचे हुए कुछ प्राचीन सस्कृत पद्य भी हमें पाटन के जैन-ग्रन्थ-भण्डार में प्राप्त हुए थे।

गोरा बादल वीर राजस्थान के जन-मानस मे आज भी सुप्रतिष्ठित हैं। चित्तौड़ में उनके स्मारक प्राचीन स्थान आज भी विद्यमान हैं। इसलिये गोरा बादल कल्पित पात्र नही वरन् पद्मिनी के सतीत्व व स्वमान के रक्षक, उस समय के चित्तौड के सर्वोत्तम वीर पुरुष थे। उनकी वीरता और स्वामिभक्ति का गान करने वाले अनेक प्राचीन कवित्त राजस्थानीय कवि गाया करते थे, यह हमने ऊपर सूचित किया ही है।

इस प्रकार हेमरत्न की कथा के मुख्य पात्र रतनसेन, पद्मिनी, राघवचेतन और गोरा बादल सर्वथा ऐतिहासिक व्यक्ति हैं। चितौड पर अलाउद्दीन ने आक्रमण किया था और उसने सन् १३०३ ईस्वी (वि. स. १३६०) मे चित्तौड़ दुर्ग को नष्ट किया यह तो उसके स्वय के इतिहास-लेखक कह रहे हैं। चित्तौड़ मे उस समय गुहिलोतवशीय राजा रतनसिह राज्य कर रहा था, यह उसके वि.स. १३५९ के मिले शिलालेख से सिद्ध है।[२] अलाउद्दीन को चित्तौड़ की लड़ाई मे बडी हानि उठानी पडी, यह उसी का एक इतिहास-लेखक बर्नी कहता है। चित्तौड पर अलाउद्दीन ने चढाई किसी विशेष उद्देश्य से की थी पर उसमे वह सफल नही हुआ, ऐसा अमीर खुसरो के ही एक अस्पष्ट उल्लेख से सूचित होता है।

जहाँ तक हेमरत्न की पद्मिनी की कथा का सबन्ध है वह इस प्रकार प्राचीन उल्लेखो द्वारा प्रमाणित होती है; परतु, यह एक आश्चर्य-सा लगता है कि हेमरत्न आदि राजस्थानीय कवियो ने पद्मिनी के जीवन के अन्तिम रहस्य के बारे मे क्यो कुछ नही लिखा ? ये राजस्थानी लेखक पद्मिनी की कथा को सुखान्त रूप मे ही समाप्त कर देते हैं, परतु वे कथा के उस अन्तिम अश के बारे मे

---

[१] देखिए—सिंघी जैन ग्रन्थ माला मे प्रकाशित ग्रन्थाङ्क ४ खरतरगच्छ बृहद्गुर्वावलि, पृ. ९४-९६।

[२] देखिए—गौ ही ओझा कृत 'उदयपुर राज्य का इतिहास' (दूसरा खण्ड); पृ ४९५-९६।

सर्वथा क्यों मौन हैं, जो जायसी ने लिखा है ? राजस्थानी लेखकों की कथा का अन्त इस तरह हो जाता है कि – अलाउद्दीन अपने दुष्ट इरादे को बलपूर्वक सिद्ध करने में सफल नही होता है तो वह छल प्रयोग करके राजा रतनसेन को वन्दी बना लेता है और उसको पद्मिनी सौंप देने के लिये विवश करता है। पर, पद्मिनी के आदेशानुसार वीर गोरा और बादल अपनी वीरता भरी चातुरी से राजा रतनसेन को सुलतान की कैद से मुक्त करा लेते हैं। चौहान वीर गोरा तो उस संघर्ष में मारा जाता है और अलाउद्दीन परास्त होकर अपने सैन्य के साथ दिल्ली लौट जाता है। बादल राजा को चित्तौड़ के किले पर पुन: प्रतिष्ठित कर देता है जिसके लिये रानी पद्मिनी बादल के प्रति अपनी अनन्य कृतज्ञता प्रकट करती है और उसका जय जयकार करती है। बादल की माता-सी गोरा वीर की पत्नी अपने पति से मिलने की इच्छा से अग्निशरण होकर स्वर्ग मे चली जाती है।

जायसी की कथा इससे कुछ आगे की घटना वर्णित करती है–उसके अनुसार, राजा रतनसेन ने, सुलतान की कैद से मुक्त होकर चित्तौड़ पहुँच जाने के बाद, रानी पद्मिनी से कुभलगढ के ठाकुर देवपाल की दुष्ट चेष्टा का हाल सुना तो वह उसको ठीक करने के लिये उस पर चढ़ाई कर देता है। उसमे उसको शत्रु के शस्त्र का विषम प्रहार लगता है जिससे उसकी मृत्यु हो जाती है। रानी पद्मिनी उसके साथ सती हो जाती है। राजस्थानी लेखक इसका कुछ भी सूचन नही करते।

कर्नल टॉड ने राजस्थान के इतिहास मे पद्मिनी की कथा राजस्थान के भाटो के मुख से सुन कर लिखी है जो प्राय: हेमरत्न की कथा से मिलती-जुलती है। पर उसने कथा का अन्त इस प्रकार बताया कि–रतनसेन के सुलतान की कैद से छूट कर वापस चित्तौड पहुँच जाने पर, अलाउद्दीन फिर उस पर बड़े जोर-शोर के साथ दुबारा आक्रमण करता है। उसमे चित्तौड़ के राजपूतों ने जब देखा कि अबकी वार हमारा विजयी होना संभव नही है तो पद्मिनी आदि स्त्रियो को जौहर के रूप मे अग्नि-शरण कर स्वय केशरिया करके मैदान में उतर पड़े। क़िला दुश्मन के हाथ मे आ गया और वहाँ पर अलाउद्दीन ने अपना झंडा फहरा दिया।

अकबर-कालीन फरिश्ता और अबुल फ़जल आदि मुसलमान लेखको ने भी पद्मिनी की कथा को सुनी-सुनाई बातों के आधार पर इसी प्रकार की कुछ अस्त-व्यस्त घटनाओ से आलेखित किया है।

इन सब कथाओ में सबसे अधिक सगत और विश्वास करने लायक हेमरत्न

की प्रस्तुत रचना ही प्रतीत होती है। इसकी रचना मे जितने आधारभूत मूल स्रोत हेमरत्न को ज्ञात हुए उतने अन्य किसी को नही। शायद पद्मिनी के अन्त के बारे मे उसको कोई विश्वसनीय आधार ज्ञात नही हुआ, इसलिए उसने इसका कोई सूचन नही किया और अपनी कथा को राजा रतनसेन की मुक्ति के साथ ही सुखान्त रूप मे समाप्त कर दिया।

हेमरत्न की कथा मे जो असंगत-सी बात लगती है वह पद्मिनी की सिंघल देश की राजकन्या होने की है। सिंघल की अत्यत रूपवती राजकन्याओ की अनेक कथाएं हमारे प्राचीन साहित्य मे मिलती हैं, इसलिए शायद पद्मिनी जैसी अलौकिक रूपवती स्त्री का पीहर भी कथाकारो ने सिंघल समझ लिया हो और उसी का प्रचार कर दिया हो। हमारे राजस्थान के महान् इतिहासकार स्वर्गीय ओझाजी ने इसके लिए यह कल्पना प्रस्तुत की है कि सिंघल जैसे अति-दूर प्रदेश मे जाकर राजा रतनसेन उसे व्याह कर ले आया, यह तो किसी तरह सभव नही हो सकता। संभव है कि मेवाड के सिंगोली जैसे स्थान की वह राजपूत कन्या हो और भाटो आदि ने उस शब्द-साम्य का सहारा लेकर उसे सिंहल की राज-कन्या बना दी हो।

यद्यपि हमारे पास कोई आधार नही है तथापि हमारी कल्पना है कि पद्-मिनी सिंघल की नही परन्तु सिंघल अर्थात् प्रसिद्ध सिंध प्रदेश के किसी राजपूत की कन्या होगी। सिंघल की स्त्रियो के रूप-लावण्य का वर्णन राजस्थान के पिछले कवियों ने खूब किया है और सिंघल की रूपवती स्त्रियां राजस्थान के स्त्री-वर्ग के सौंदर्य की प्रतीक बताई गई है। कवि बांकीदास ने इस पर एक व्यग्य वाक्य भी कहा है कि—एक पद्मिनी के लिए राजा रतन व्यर्थ ही सिंघल गया वैसी पद्मिनियां तो इस सिंघल प्रदेश मे घर-घर मे है। इसी सिंध प्रदेश मे से रतनसेन पद्मिनी व्याह कर ले गया हो और सिंघल अर्थात् सिंध के स्थान पर सिंघल शब्द का मेल मिला कर कवियो ने अतिशयोक्ति के रूप मे उसे सिंहल की राजकुमारी कह दिया हो। ऐसी अनेक सुप्रसिद्ध सामान्य ऐतिहासिक घट-नाओ को भी कवियो ने अतिशयोक्ति द्वारा ऐसी चित्रित की हैं कि जिससे उनका ऐतिह्य स्वरूप सदेह मे पड गया है।

कर्नल टॉड ने सिंघल के राजा और पद्मिनी के पिता का नाम हमीरसिंह लिखा है और उसे चौहान वशीय कहा है। सिंहल अर्थात् लंका मे चौहान राजा का होना सर्वथा असंभव है। हमीरसिंह नाम भी शुद्ध राजस्थानीय है। इसलिए यदि इस उल्लेख के पीछे कुछ भी तथ्य हो तो वह सिंहल की जगह

सिंघल मान लेने से सार्थक हो सकता है और पद्मिनी की प्रारम्भ की सारी कथा भी सम्भवित और संगत बन सकती है।

चित्तौड के इस आक्रमण के बारे में हमारे पास अन्य कोई प्राचीन उल्लेख नही है। अलाउद्दीन की फौज ने गुजरात पर आक्रमण किया तो वह मेवाड़ प्रदेश मे होकर गुजरी। उस समय समरसिंह मेवाड का स्वामी था। वि० सं० १३५६ में यह घटना हुई। समरसिंह ने कुछ दंड देकर अपने देश की रक्षा की, यह उल्लेख जिनप्रभसूरि ने "विविध-तीर्थ-कल्प" नामक ग्रन्थ में किया है जो सम-कालीन ऐतिहासिक प्रमाण है। समरसिंह की गद्दी पर रत्नसिंह बैठा जिसका लेख वि० सं० १३५९ का मिलता है, बाद का कुछ भी उल्लेख उसके बारे में नही मिला। उक्त जिनप्रभसूरि के समान ही एक विद्वान् कक्कसूरि नामक हुए, जो अलाउद्दीन के समकालीन और उसके शासनकाल से सुपरिचित थे। पाटण के प्रसिद्ध धनाढ्य और देश-प्रतिष्ठित समरासाह के वे निजी धर्मगुरु थे। समरासाह उलुगखान और अलाउद्दीन के निकट सपर्क में आया था, इससे कक्कसूरि अला-उद्दीन के सब कारनामो से सुपरिचित थे। उलुगखान ने पाटण पर चढाई कर उसको जब नष्ट किया तब समरासाह वहां के एक विशेष प्रतिष्ठित महाजन के रूप मे विद्यमान था। वह अलाउद्दीन के देवगिरि के आक्रमण का भी प्रत्यक्षदर्शी व्यक्ति था। कक्कसूरि उसके निजी धर्मगुरु होने के नाते तथा पाटण में उनका विशेष निवास रहने के नाते उस समय की देश की सारी घटनाओं के पूर्ण ज्ञाता थे। उन्होने अपनी उत्तरावस्था में संवत् १३९३ में 'नाभिनन्दनोद्धार-प्रबन्ध' नामक एक संस्कृत ग्रन्थ की रचना राजस्थान के कांजरकोट नामक स्थान पर की, जिसमें समरासाह के प्रभाव और धर्मकार्यों का विस्तृत वर्णन किया है। इस प्रबन्ध में उन्होंने प्रसगवश अलाउद्दीन के आक्रमणो और विषयों का वर्णन करते हुए नीचे का श्लोक लिखा है—

श्रीचित्रकूटदुर्गेशं बद्ध्वा लात्वा च तद्धनम्।
कण्ठबद्धं कपिमिवाभ्रामयत् पुरे पुरे॥

अर्थात्, इस अलाउद्दीन ने चित्रकूट के राजा का धन लूट कर और उसे वदी बना कर, वदर की तरह गांव-गाव घुमाया।

कक्कसूरि उपर्युक्त कथनानुसार अलाउद्दीन का समकालीन और उसके द्वारा की गई सारे देश की दुर्दशा का प्रत्यक्षदर्शी ज्ञाता है। देवगिरि, रणथम्भोर, पाटण, माडव, जालोर आदि स्थानो पर उस समय जो क्रूर आक्रमण हुए, उन सबका उसको ठीक-ठीक ज्ञान है। अतः चित्तौड के राजा के बारे मे जो बात उसने लिखी है उसके सही होने मे कोई सदेह नही है। राजा रतनसेन को पकड़ कर

अलाउद्दीन ने कैद मे डाल दिया था, यह तो सभी कथाकार स्वीकार करते हैं, परन्तु उसको कैदी की हालत मे नगर-नगर मे बंदर की तरह घुमाया गया था, ऐसा जो कक्क सूरि का कथन है, उसकी सगति कैसे हो सकती हैं ? यह प्रश्न विचारणीय हो जाता है। हेमरत्न के कथनानुसार तो राजा को कैद करके अलाउद्दीन ने चित्तौड़ मे ही अपने सैन्य के कब्जे मे रखा था और वही से गोरा-बादल ने अपनी बुद्धि-चातुरी के प्रयोग से उसको छुडा कर वापस चित्तौड के किले मे पहुँचा दिया था। ऐसी स्थिति में उस राजा को गांव-गाव मे बन्दर की तरह घुमाने वाली वात की संगति नही बैठती है। हो सकता है कि बादशाह ने राजा को बहुत परेशान करने के लिये और उसके प्रजाजनो को अस्त्र करने के लिये कैदी के रूप मे उसे चित्तौड़ और उसके आसपास के गांवों मे घुमाया-फिराया हो।

जायसी ने अपनी 'पदमावत' में लिखा है कि बादशाह राजा को कैद करके अपने साथ दिल्ली ले गया था और फिर गोरा-बादल दिल्ली जा कर उसे कैद से छुडा लाये थे। यदि यह बात ठीक हो तो उक्त कक्क सूरि वाला कथन और भी अधिक वास्तविक ठहर सकता है।

उस जमाने मे विजेता लोग, अपने पराजित शत्रु राजा आदि को इसी प्रकार कैदी बना कर, अपने पराक्रम का प्रदर्शन करने के निमित्त, नगरो और गांवो आदि में घुमाया करते थे, जिसके अनेक उदाहरण इतिहास के ग्रन्थो में मिलते हैं।

कवि हेमरत्न और जायसी के कथनों में से हमको हेमरत्न का कथन अधिक संगत लगता है। रत्नसिंह को बादशाह कैद कर दिल्ली ले गया और फिर उसे वहां से गोरा-बादल अपनी चातुरी द्वारा कैद से छुडा कर चित्तौड़ ले आये, यह बात तो असंभव सी लगती है। अतः कक्क सूरि के उक्त कथन का तात्पर्य यही हो सकता है कि बादशाह ने रतनसिंह को कैदी के रूप मे चित्तौड और उसके आस-पास के गावो मे घुमाया-फिराया होगा। रतनसिंह का आखिर क्या हुआ, यह बात बतलाने का कक्क सूरि का उद्देश्य नही है। वह तो सिर्फ अलाउद्दीन ने उस समय इस देश मे अपना क्रूर आतंक फैलाने के लिये क्या-क्या दुष्कृत्य किये और किन-किन बडे-बड़े हिन्दू राज्यो को उसने नष्ट किया, यही बात सूचित करना चाहते हैं।

कक्क सूरि ने अपना वह ग्रन्थ-प्रबन्ध उक्त घटनाओं के बाद कोई ३०-३५ वर्ष अनन्तर बनाया था। उन्होंने उक्त प्रबन्ध की रचना वि. सं. १३९२ मे समाप्त की थी। शायद वे उस समय काफी वृद्ध रहे होगे। उनको यह ज्ञात हो

गया होगा कि वह दुष्ट अलाउद्दीन कोई २० वर्ष पहले ही दिल्ली मे उसी के एक बेवफा गुलाम सरदार द्वारा ज़हर के प्रयोग से मारा जा चुका है। उसकी दानवी लीलाओं का बुरी तरह अन्त हो चुका है, उसके वैभवशाली हरमों मे अनेक पैशाचिक काण्ड घट चुके हैं, उसकी कई बीवियां और बेटियां कैदखानों में पड़ी-पड़ी सड़-मर चुकी हैं और उसके शाहज़ादे कहलाने वाले बेटों में से किसी को अन्धा बना दिया है और किसी को तलवार की तीक्ष्ण धार से कत्ल कर दिया है। अलाउद्दीन ने चित्तौड़ के महान् राजसिंहासन को नष्ट-भ्रष्ट करके वहां पर अपने बेटे शाहजादे खिज्रखां को तख्तनशीनी की थी और इस खिज्रखां के शासन-काल के दरमियान चित्तौड़ में एक मकबरा बनाया गया था और उसमें एक शिला-लेख लगा कर यह लिखा गया था कि बुल मुज़फ़्फ़र मुहम्मदसाह सिकंदर सानी (दूसरा सिकंदर) अर्थात् अलाउद्दीन खिलजी जो दुनिया का बादशाह, अपने समय का सूर्य, ईश्वर का तेज है और दुनिया का रक्षक है, वह जब तक काबा (मक्का का पवित्र स्थान) दुनिया के लिये किब्ला (गौरवयुक्त) बना रहे, तब तक इसका राज्य मनुष्य मात्र पर चलता रहे।''[1]

इस लेख का बनवाने वाला वह खिज्रखां भी थोड़े ही समय बाद दुनिया के रक्षक कहलाने वाले उसी बाप के हुक्म से ग्वालियर के किले में कैदी बन कर, वर्षों पड़ा-पड़ा सड़ चुका था और अन्त में कत्ल कर दिया गया था।

अलाउद्दीन के मरते ही उसके नापाक तख्त पर एक के बाद एक कई बच्चे-बूढे ऐरे-गैरे बादशाह बन कर बैठते गये या बैठाये गये और वे अपनी जानें खोते गये। इस प्रकार अलाउद्दीन का वह दानवीय साम्राज्य, जिसके प्रारंभकालीन क्रूर आतङ्क का मर्मान्तिक उल्लेख कक्क सूरि ने किया है वह उनके जीवित-काल में ही ध्वस्त हो चुका था; उसके राज्य और वंश का पूर्ण रूप से विनाश हो चुका था।

*

इधर चित्तौड़ के बचे-खुचे वीर राजपूत अलाउद्दीन के बैठाये गये शासकों को उखाड़ फेंकने का प्रयत्न करने लग गये थे। पद्मिनी जैसी अनेक पूतात्मा-सती नारियों के पवित्र भस्मपुञ्जो से परिपुष्ट और लक्ष्मसी, गोराबादल, रत्नसिंह आदि अनेक देवांशी नरवीरों की दिव्य रक्तधाराओ से परिपुष्ट एव अभिसिंचित चित्तौड़ महादुर्ग की वीरप्रसू पुण्यभूमि में दिन-प्रतिदिन अनेकानेक नूतन सपूत वीर पैदा हो रहे थे। भड लक्ष्मणसिंह और रत्नसिंह के कुल मे इस दारुण प्रसंग से पहले ही एक अवतारी महावीर जन्म ले चुका था, जो शायद

---

१. ओझाजी-कृत 'राजपूताने का इतिहास', भाग पहला, पृ. ४९७।

चित्तोड़ पर के आक्रमण के समय १०-२० वर्ष जितनी किशोर वय वाला रहा होगा। वह राणाओ की मूल जागीर सीसोदे का स्वामी बना। चित्तौड़ में जब अलाउद्दीन का बेटा खिज्रखां शासन कर रहा था तब युवा राणा हमीर ने अपने आस-पास के राजपूतों को एकत्र करना शुरू किया और चित्तौड़ से मुसलमानो को मार निकालने का बलवान प्रयत्न करने लगा। अवसर पा कर उसने चित्तौड की तरफ आने वाले रास्तो पर अपनी चौकियां बैठा दी और इस प्रकार मुसलमानो को मिलने वाली सब प्रकार की सामग्री के आने के मार्ग बन्द कर दिये। किले पर पड़े हुए बादशाही सैनिको की दुर्दशा होने लगी, तब बादशाह ने अपने बेटे खिज्रखां को किला खाली कर लौट आने का हुक्म भेजा और अपने हिन्दु राजपूत सामत सोनगिरा मालदेव को वह किला और उसके आस-पास का प्रदेश जागीर के रूप में दे दिया। परतु, वीर हमीर को अपनी पैतृकभूमि पर किसी दूसरे वंश का अधिकार सह्य नही था इसलिये उसने छल-बल के प्रयोगों द्वारा सोनगरे मालदेव से आखिर में चित्तौड़ छीन कर बड़े गौरव के साथ, अपने पूर्वजो के राजसिंहासन की वहां पुनः प्रतिष्ठा की।

अलाउद्दीन सं० १३७३-७४ में मर गया। उसकी मृत्यु के बाद, ८-१० वर्षों के भीतर ही उपर्युक्त कथनानुसार, उसके नापाक तख्त पर ४-५ बादशाह बैठ चुके थे। दिल्ली की इस दुर्दशा वाले समय का सुअवसर पाकर हमीर ने अपने पूर्वजो की पुण्यभूमि को दुष्ट म्लेच्छो के दूषित हाथों से मुक्त कर लिया। वि० सं० १३८२-८३ का यह प्रसग था। अलाउद्दीन को मरे केवल १०-११ वर्ष ही बीते थे। इस प्रकार महाराणा हमीर के यौवन के मध्याह्नकालीन प्रतापी सूर्य ने अपना प्रखर ताप चारों तरफ फैलाना शुरू कर दिया। चित्तौड़ के राज-प्रासादो और देव-मन्दिरो पर पुनः सुवर्ण-कलश चमकने लगे, ध्वजादडो पर रेशमी चीरकी रग-बिरंगी ध्वजायें लहराने लगीं; घटानादों से चित्तौड़ का आकाश गूंजने लगा; चित्तौड पर आई हुई उस प्रलयकालीन आंधी का तूफान शान्त हो गया; चित्तौड़-राजवंश के उद्धारक हमीर का सर्वत्र गुणगान और जय-जय-कार सुनाई देने लगा।

हमीर ने चित्तौड़ में अपने गौरवशाली गुहिलोत राजवंश की वैसी सुदृढ प्रतिष्ठा की जो उसके पहले उतनी कभी नही थी। अलाउद्दीन के भयंकर आक्रमणो के कारण भारत के सभी प्राचीन राजवंश ध्वस्त हो गये थे। सारी हिन्दु जाति अपनी संस्कृति और समृद्धि के सर्वनाश को हताश हो कर देख रही थी और मन ही मन अपने दुर्दैव को कोस रही थी। वे अपने इष्ट देवी-देवताओ

को, इस संकट काल में रक्षा न करने के कारण, उपालंभ दे रहे थे और उनकी प्रतिमाओ को भूगर्भों में दाट रहे थे।

हिन्दु-जाति के ऐसे अभूतपूर्व और अकल्पित संकट के समय में हमीर का दैवी अवतार हुआ। उसके पराक्रम और पौरुष-पूर्ण साहस से समग्र हिन्दु-जाति के निस्तेज जीवन मे पुनः नूतन आशा का आविर्भाव हुआ। उसने चित्तौड़ की उस वीर-भूमि मे अपने ऐसे सुदृढ वंशवृक्ष की स्थापना की जो उसके बाद खूब फला फूला और सैंकड़ों वर्षो तक वह अपनी सुछाया से सारी हिन्दु-जाति का आश्रयभूत बना रहा। हमीर के वशजो में एक-से-एक बढ़ कर ऐसे वीर नर उत्पन्न होते गये जिन्होंने सैकड़ो वर्षो तक भारत के गौरव की रक्षा का पद एवं सर्वाधिक सम्मान प्राप्त किया। सारी राजपूत जाति के मुकुट कहलाने का पद एकमात्र इस वश को मिला। 'हिन्दुआणा सूरज', यह इस वश को वैसा ही दूसरा अद्वितीय विरुद प्राप्त हुआ। राणा कुभा, सांगा, प्रताप, अमर और राजसिंह जैसे इस वश मे सर्वश्रेष्ठ राजपुरुष उत्पन्न हुए, जिन्होने समय-समय पर अपने राष्ट्र, धर्म और स्वाभिमान की रक्षा के लिये सर्वस्व का त्याग करने वाले अद्भुत बलिदान दिये।

वीर हमीर द्वारा चित्तौड में पुनः प्रतिष्ठित गुहिलोत-वशीयो का भारत-पूजित राजसिंहासन आज भी वैसा ही आराध्य रूप मे विराजमान है। इस सिंहासन से अधिष्ठित राज-मन्दिर मे वह दिव्य दीपक-ज्योति आज भी वैसी ही अखण्ड रूप में जल रही है जो इस वंश के आदि-प्रतिष्ठाता राजा गुहिल ने कोई १५०० वर्ष पहले मेवाड़ की पुण्य तीर्थ-भूमि मे प्रज्ज्वलित की थी।

देवी-स्वरूपा पद्मिनी की पवित्र आत्मज्योति का नाश करने की इच्छा करने वाले उस दानव के दुष्ट साम्राज्य का और वश का उसके देखते-देखते विनाश होना शुरू हो गया था। तब उस देवी के सतीत्व की रक्षा के निमित्त प्राणो की आहुति देकर एवं अपने गौरवशाली राज्य के नाश की परवाह न करने वाले लक्ष्मणसिंह और रत्नसिंह के सपूतो ने ऐसे दैवी राज्य की सुदृढ नींव डाली जो संसार का एक सबसे अधिक सम्मानित राजवंश बना। मेवाड़ के राजवंश का यह मुद्रा-लेख सर्वथा सत्य सिद्ध हुआ कि—

'जो दृढ़ राखे धर्म को तिहि राखे करतार।'

परिशिष्ट

रत्नसिंह की समस्या

पद्मिनी के पति और चित्तौड़ के राजा रत्नसिंह के विषय में इतिहासकारों के लिये एक समस्या बनी हुई है। इस विषय मे कुछ निर्देश हमने अपने पर्यालोचन वाले लेख में ऊपर किया ही है। मेवाड़ के प्राचीन इतिहासविषयक नये-पुराने उल्लेखो और प्रमाणो मे रत्नसिंह के बारे मे कुछ भ्रान्ति-जनक बातें लिखी मिलती हैं और इसलिये कुछ अतिचिकित्सक विद्वान् यह मान रहे हैं कि चित्तौड की रानी पद्मावती और राजा रत्नसी या रत्नसेन-विषयक जो कथा-कहानिया हैं, वे सर्वथा कल्पित हैं। इतिहास-विषयक प्रमाणो मे परस्पर ऐसी असंगत और भ्रान्तिजनक बातो के देखने पर इतिहासविदो के ऐसे भ्रमात्मक मत बन जाना भी स्वाभाविक ही है।

जैसा कि हमने उक्त लेख में सूचित किया है, रत्नसिंह के बारे में इतना तो निश्चित प्रमाण उपलब्ध है ही कि वह अलाउद्दीन के आक्रमण के समय चित्तौड़ का स्वामी था। उसके राज्यकाल का सूचक स० १३५९ का एक शिलालेख प्राप्त हुआ है, अतः वह उस समय मेवाड़ का राजा था, इसमे किसी बात के सन्देह का अवकाश नही है। उसके दूसरे ही वर्ष अलाउद्दीन ने चित्तौड़ पर आक्रमण कर दिया था, यह बात उस बादशाह के दरबारी लेखकों ने स्वयं लिखी है, इसलिये इसमें भी किसी प्रकार की शका को स्थान नही है। पर, यह रत्नसिंह कौन था और चित्तौड के जिस राजा समरसिंह रावल की गद्दी पर वह बैठा था उसके साथ इसका क्या सबन्ध था? यह प्रश्न विचारणीय बना हुआ है।

मेवाड़ के गुहिलोत्-वशीय प्राचीन राजाओ के बारे मे ऐतिहासिक साधन बहुत कम मिलते हैं। अलाउद्दीन के चित्तौड़ पर आक्रमण के पहले के तथा उसके बाद के भी प्राचीन प्रमाणों का प्रायः अभाव ही है। जो कुछ बिखरे हुए और परस्पर विसगत प्रमाण मिलते हैं उन पर से विद्वानो ने मेवाड़ के राजवश के इतिहास का जो संकलन किया है उसमें भी कुछ परस्पर असंगतियां दिखाई देती हैं।

चित्तौड़ के राजवंश की वंशावलि का कुछ क्रमिक आलेखन सबसे पहले महाराणा कुंभा के समय में हुआ। उसने चित्तौड में कीर्तिस्तंभ बनवाया तब उसमें

लगाने के लिये बड़े-बड़े शिलालेख तैयार करवाये। इसी तरह कुंभलमेर का नया किला बनवाया तब उसमें भी लगवाने के लिये बडी शिला-प्रशस्तियां तैयार करवाईं। इन प्रशस्तियों में कुंभा ने अपने पूर्वजो की नामावली देने का प्रयत्न किया है। मालूम देता है कि अलाउद्दीन के आक्रमण के समय चित्तौड़-राज्य का पुराना सरस्वती-भंडार सर्वथा नष्ट हो गया था, अतः उस समय के सब लिखित राजकीय ऐतिह्य-साधन नष्ट हो गये। कहीं-कहीं केवल जो कुछ शिलालेख वगैरह लगे हुए थे, वे ही किसी तरह बच रहे।

रावल रत्नसिंह जो अलाउद्दीन के आक्रमण के समय चित्तौड़ पर राज्य कर रहा था वह गुहिलोत वंश की उस प्राचीन शाखा का उत्तराधिकारी था जिस शाखा का अधिकार मेवाड़ के मुख्य राज्य-स्थान चित्तौड़ पर बहुत प्राचीन काल से चला आ रहा था। यह शाखा मेवाड़ के इतिहास में रावलशाखा के नाम से प्रचलित थी। रत्नसिंह इस शाखा का अन्तिम राजा हुआ और उसकी मृत्यु के साथ ही इस शाखा का अन्त हो गया। गुहिलोत वंश की एक लघुशाखा जो कई पीढ़ियों से सीसोदा गांव की जागीर का उपभोग कर रही थी, उसके वंशधरो को राणा की उपाधि मिली हुई थी। मेवाड़ के राज्य में मुख्य राज-घराने के बाद दूसरा स्थान आज तक भी सीसोदे वालो का रहा है। रावल रत्नसिंह के पूर्वज समरसिंह, तेजसिंह आदि के समय मे भी सीसोदे वाली शाखा का वही स्थान था। मेवाड़ राज्य की ख्यातों आदि में बताये मुजिब रत्नसिंह से पहले कोई ८-१० पीढी पूर्व गुहिलोत वंश की ये दो प्रसिद्ध शाखायें प्रचलित हुई थी।

रावल रत्नसिंह की मृत्यु के साथ जब चित्तौड का मूल शाखा वाला राज-वंश नष्ट हो गया तब सीसोदिया शाखा वाले प्रतापी वीर भड लक्ष्मणसिंह का पौत्र हमीर चित्तौड़ समेत समग्र मेवाड़-राज्य का स्वामी बना। हमीर ने अपने प्रबल पराक्रम द्वारा मेवाड़-राज्य की चित्तौड़ में पुनः स्थापना की और फिर उसके बाद उसी के वंशजों का मेवाड़ पर शासन चला जो वर्तमान समय तक चलता रहा। महाराणा कुंभा, सांगा, प्रताप, राजसिंह वगैरह राजा उसी वंश में प्रसूत हैं। महाराणा कुंभा ने उक्त रूप से जब अपने पूर्वज सार्वभौम—ऐसे मेवाड़-चित्तौड़ के राजाओ की नामावली तैयार करवाई तो उसमें हमीर से पहले होने वाले मेवाड़ाधिपति रत्नसिंह और उसके अव्यवहित पिता-प्रपिता समरसिंह आदि का नामोल्लेख करना भी अनिवार्य था। दूसरी तरफ हमीर के पिता-प्रपिता आदि वीरों के नामो का उल्लेख भी होना अनिवार्य था क्योंकि चित्तौड़ दुर्ग की रक्षा करने में उनका सर्वाग्रिम स्थान था रहा। इसलिये राणा कुंभा

द्वारा तैयार करवाई वंशावलि मे कुछ असगति और अस्पष्टता दिखाई देती है; पर, यह होना अनिवार्य है क्योकि उस समय आधुनिक काल की तरह विशिष्ट सामग्री जुटाना और उसकी छानबीन कर उसके निष्कर्ष-स्वरूप शुद्ध नामावली तैयार करना-कराना किसी के लिये भी संभव नही था। महाराणा कुभा के विद्वानो को जो बिखरी हुई सामग्री उपलब्ध हो सकी उसी के आधार पर उन्होने उक्त प्रकार की वश-नामावली आलेखित कर दी।

महाराणा कुभा के इन प्रशस्ति-लेखो मे रत्नसिंह के केवल नाम का ही उल्लेख है। वह समरसिंह का उत्तराधिकारी और चित्तौड़ का स्वामी हुआ; बस, इतना ही लिखा गया है। उसके विषय मे पद्मिनी वाले प्रसग आदि से सबन्ध रखने वाली अन्य किसी बात का उल्लेख नही है। चित्तौड़ पर अलाउद्दीन द्वारा किये गये आक्रमण वाली घटना चित्तौड के राजवश के इतिहास की दृष्टि से बहुत ही महत्त्वपूर्ण बात है। चित्तौड़ पर इसके पहले ऐसा आक्रमण किसी शत्रु द्वारा नही हुआ था और उस राज-वश को वैसी भयकर क्षति भी कभी नही पहुँची थी। परंतु, जैसा कि राजवंशी के गुणगान करने वाले कवियो, भाटो, चारणो आदि की परपरागत प्रथा है कि वे अपने वर्ण्य राज-वश या राजा आदि की स्तुतियो मे पराजय-सूचक किसी बात का कभी उल्लेख नही करते और सत्य-असत्य – ऐसी छोटी-मोटी विजयो के बढ़ा-चढा कर बड़े-बड़े काव्य और गीतादि बनाते रहते हैं, उसी प्रथा के कारण, मेवाड़ के राजवश का गुणगान करने वाले कवियो आदि ने चित्तौड़ के उक्त दु:खद प्रसग का किंचित् मात्र भी उल्लेख नही किया। पर, चित्तौड़ की इस दुर्घटना का ज्ञान तो देश मे सर्वत्र फैला हुआ था और जनता में इसकी विविध प्रकार की किंवदन्तिया प्रचलित हो रही थी। इसी प्रकार की सर्वजन-विश्रुत बात को लक्ष्य कर ही तत्कालीन कक्क सूरि ने, अपने उक्त नाभिनन्दनोद्धार-प्रबन्ध में, अलाउद्दीन द्वारा की गई चित्तौड के राजा की दु:खद दशा का सकेत किया है। मेवाड के इतिहास का यह एक बहुत बड़ा पराजय-सूचक प्रसग था, अत: इसका उल्लेख मेवाड़ के कवियो द्वारा न किया जाना स्वाभाविक ही है। पर, मुसलमानो के लिए यह विजय की बात थी इसलिए वे इस बात को बारबार अपने इतिहासो मे लिखते रहे और प्रत्येक लेखक उसमे कुछ-न-कुछ अपनी शेखी भी बघारता रहा। अलाउद्दीन का दरबारी चापलूस लेखक अमीरखुसरो चित्तौड़ की लडाई में बादशाह के साथ था। उसने अपने मालिक की चित्तौड-विजय की बांग तो बड़े बड़े लच्छेदार शब्दों मे पुकारी है, परन्तु जिस दुराशा से प्रेरित होकर अलाउद्दीन ने चित्तौड़ पर वह आक्रमण किया था और उसमें उसको जो सैनिक दृष्टि

से अपार हानि उठानी पड़ी थी तथा पद्मिनी की प्राप्ति में सर्वथा निष्फलता प्राप्त कर हताश होकर उसे खाली हाथ वापस लौटना पड़ा था, उसका किंचित् भी आभास अमीरखुसरो के उल्लेख मे नही मिलता। न वह पद्मिनी का नामोल्लेख करता है, न राजा का नाम ही लिखता है। वह कुछ ऐसे गोलमाल शब्दों में इस प्रसग का वर्णन करता है जिसका अर्थ स्पष्ट करने के लिए कुछ विद्वानो को इधर-उधर के अन्य प्रमाणो को टटोलना पड़ रहा है। इसी तरह उसके साथी बर्नी और इसामी ने भी कुछ गोल-गोल बातें लिखी हैं। अलाउद्दीन चित्तौड़ पर आक्रमण करने के अपने मूल उद्देश्य में सफल नहीं हुआ बल्कि निराश और हताश होकर ही वह वापस लौटा था। इसलिए इन लेखको द्वारा पद्मिनी की बात का किंचित् भी उल्लेख न किया जाना सर्वथा स्वाभाविक था।

इधर पद्मिनी के प्रसग को लेकर किस तरह गोरा-बादल – जैसे वीरों ने उस युद्ध में शूरवीरता दिखलाई, इसकी कथा राजस्थान-निवासी जन-जन में विश्रुत हो रही थी और उस विषय के विविध प्रवादो के वर्णन करने वाले अनेक कविजन कवित्त-छप्पय आदि बना कर जनता को सुनाया करते थे। गोरा-बादल-कवित्त जैसी रचनायें इसी प्रकार की रचनाओं के अस्तित्व की द्योतक हैं। ऐसी रचनाओ के आधार पर ही जायसी ने अवधी भाषा में अपनी 'पदमावत' की बडी लबी-चौड़ी रचना की और हेमरत्न आदि रास्थानी कवियो ने गोरा-बादल-पद्मिनी-चौपाई आदि की रचनायें की।

अकबर-कालीन मुसलमान इतिहास-लेखको को चित्तौड़ के उक्त प्रसंग का इतिहास लिखने का प्रसंग प्राप्त हुआ तो उन्होने अपने पहले के मुसलमानी इतिहासो मे अलाउद्दीन की चित्तौड़-विजय का जो वर्णन मिलता था उसे कमी-बेशी रूप मे लिख डाला और जो कुछ उस विषय मे जनप्रवाद द्वारा नई बातें जानने-सुनने में आई उन्हें भी साथ में जोड़ लिया।

अकबर-कालीन मुसलमानी इतिहास-लेखको में फिरिस्ता एक बड़ा इतिहास कार माना जाता है। उसने अपनी 'तारीखे फिरिस्ता' नामक पुस्तक मे अलाउद्दीन खिलजी के इतिहास का वर्णन करते हुए चित्तौड़ के आक्रमण का भी वर्णन लिखा है। इस वर्णन मे कुछ बातें तो अमीरखुसरो, जियाउद्दीन बर्नी और इसामी – जैसे, अलाउद्दीन के समकालीन लेखको के ग्रन्थों के आधार पर लिखी हैं और फिर पद्मिनी-विषयक सारा किस्सा, जो उन पुराने लेखको के ग्रथो मे तो नही मिलता परतु राजस्थान के लोगों मे सर्वविश्रुत और अतिप्रचलित था इस कारण, उसको भी अपने इतिहास में लिख देना उसको आवश्यक प्रतीत हुआ। पर, मालूम देता है कि उसने यह कहानी किसी अनभिज्ञ व्यक्ति के मुख से सुन कर लिखी है, न कि किसी पुरानी पुस्तक या लेख के आधार पर।

फरिस्ता ने सुलतान अलाउद्दीन के चित्तौड़ पर आक्रमण करने के वर्णन मे लिखा है कि 'चित्तौड़ के राय रतनसेन की बेटी को प्राप्त करने के लिये उसने उस राजा को कपट करके पकड़ लिया और कैद मे डाल कर उसे बहुत सताने लगा और उससे कहने लगा कि 'यदि तू अपनी बेटी मुझे दे दे तो मैं तुझे कैद से छोड़ सकता हूँ।' राजा ने दुःख से छुटकारा पाने के लिए बादशाह की माग स्वीकार कर ली और वैसा करने के लिए उसने अपने राज्यरक्षको को लिखा। राजा की कुमारी के बुद्धि-चातुर्य से वह कैद मे से छुडा लिया गया और वापस अपने देश मे पहुँच गया।' इत्यादि। इस वर्णन मे फरिस्ता ने राजा का नाम तो लिखा है पर उसकी पुत्री का नाम नही लिखा। फरिस्ता का यह पूरा वर्णन इस प्रकार है—

"इस समय (हिजरी सन् ७०४) [ई० स० १३०४, तदनुसार वि० स० १३६१] चित्तौड का राजा राय रतनसेन—जो सुलतान ने उसका किला छीना तब से कैद था—अद्भुत रीति से भाग गया। अलाउद्दीन ने उसकी एक लडकी के अलौकिक सौंदर्य और गुणो का हाल सुन कर उससे कहा कि 'यदि तू अपनी लड़की मुझे सौंप दे तो तू बन्धन से मुक्त हो सकता है।' राजा ने, जिसके साथ कैदखाने मे सख्ती की जाती थी, इस कथन को स्वीकार कर अपनी राजकुमारी को सुलतान को सौंपने के लिये बुलाया। राजा के कुटुम्बियो ने इस अपमान-सूचक प्रस्ताव को सुनते ही अपने वश के गौरव की रक्षा के लिये राजकुमारी को विष देने का विचार किया। परन्तु, उस राजकुमारी ने ऐसी युक्ति निकाली जिससे वह अपने पिता को छुडाने तथा अपने सतीत्व की रक्षा करने मे समर्थ हो सकती थी। तदनन्तर, उसने अपने पिता को लिखा कि 'आप ऐसा प्रसिद्ध कर दे कि मेरी राजकुमारी अपने सेवको के साथ आ रही है और अमुक दिन (दिल्ली) पहुँच जायगी।' इसके साथ उसने राजा को अपनी युक्ति से भी परिचित कर दिया। उसकी युक्ति यह थी कि अपने वश के राजपूतो में से कई-एक को चुन कर डोलियो मे सुसज्जित कर बिठला दिया और राजवश की स्त्रियो की रक्षा के योग्य सवारो तथा पैदलो के दल-बल के साथ वह चली। उसने अपने पिता के द्वारा सुलतान की आज्ञा भी प्राप्त करली थी, जिससे उसकी सवारी बिना रोक-टोक के मजिल-दर-मजिल दिल्ली पहुची। उस समय रात पड गई थी। सुलतान की खास परवानगी से उसके साथ की डोलिया कैदखाने मे पहुँची और वहा के रक्षक बाहर निकल आये। भीतर पहुचते ही राजपूतो ने डोलियो से निकल अपनी तलवारे सम्हाली और सुलतान के सेवको को मारने के पश्चात् राजा सहित वे तैयार खडे घोडो पर सवार होकर भाग निकले

सुलतान की सेना आने न पाई, उसके पहले ही राजा अपने साथियो सहित शहर से बाहर निकल गया और भागता हुआ अपने पहाडी प्रदेश मे पहुच गया, जहा उसके कुटुम्बी छिपे हुए थे। इस प्रकार अपनी चतुर राजकुमारी की युक्ति से राजा ने कैद से छुटकारा पाया और उसी दिन से वह मुसलमानो के हाथ में रहे हुए [अपने] मुल्क को उजाडने लगा। अन्त में, सुलतान ने चित्तौड को अपने अधिकार में रखना निरर्थक समझ खिज्रखां को हुकुम दिया कि किले को खाली कर उसे राजा के भानजे (मालदेव सोनगरा) के सुपुर्द कर द।" (ब्रिग्ज के फरिस्ता के अंग्रेजी अनुवाद पर से, म. म. ओझाजी के 'उदयपुर राज्य के इतिहास' मे उद्धृत, पृ. ४६२-६३)।

जैसा कि हम अच्छी तरह जानते हैं और अन्यान्य प्रमाणो के आधार पर सुनिश्चित है कि चित्तौड़ के राजा रतनसेन की रानी पद्मिनी को लक्ष्य कर ही फरिस्ता ने यह वर्णन लिखा है, तब यह आश्चर्य की बात है कि उसने उस स्त्री को, जिसे अलाउद्दीन माँग रहा था, राजा की रानी न कह कर बेटी किस तरह लिख दिया है ? इस प्रसग के कथन करने वाले किसी भी अन्य लिखित वृत्तान्त में यह बात नही पाई जाती। वर्णनगत प्राय. सारी बातें मुख्य रूप से जायसी की पदमावत वाली बातो से भी मिलती हैं, पर पदमावत मे तो स्पष्ट रूप से पद्मिनी को राजा रतनसेन की रानी ही वर्णित किया गया है और उस बडी कथा का सारा कलेवर ही रानी को मुख्य नायिका बना कर संघटित किया गया है। यदि वह उस राजा की पुत्री होती तो जायसी की पदमावत ही नही बनती ।

जायसी ने फरिस्ता के पहले कोई ६०-७० वर्ष पूर्व पदमावत की रचना की थी, जब दिल्ली का बादशाह शेरशाह सुलतान था। प्रमाणो से ज्ञात होता है कि उत्तर भारत के मुसलमानो मे यह कथा काफी प्रसिद्धि पा चुकी थी। फरिस्ता के उक्त वर्णन से ज्ञात होता है कि उसको जायसी की पदमावत वाली कथा का बिल्कुल ही परिचय नही था, इसलिए पद्मिनी की कथा को केवल जायसी की कल्पना बतलाने वाले तथा उसी के बाद, पदमावत के आधार पर ही राजस्थान के भाटो आदि द्वारा पद्मिनी की कल्पित कथा का प्रचार किया जाना कहने वाले विद्वानो का तर्क-वितर्क सर्वथा असिद्ध प्रमाणित होता है। यदि फरिस्ता को जायसी की पदमावत वाली कथा की जानकारी होती तो वह पद्मिनी को चित्तौड के राजा की बेटी क्यों लिखता ? उसको रानी के रूप में ही लिखने मे उसे क्या आपत्ति हो सकती थी ? इससे स्पष्ट है कि फरिस्ता को यह वर्णन लिखने मे पदमावत के सिवा किसी अन्य ही गलत-सलत साधन का आधार मिला होना चाहिए; और, वह साधन किसी अज्ञानजन द्वारा प्रस्तुत किया गया

होना चाहिए। अत फरिस्ता का यह वर्णन प्रमाण-शून्य है। उसे राजस्थान के इतिहास की सही जानकारी प्राप्त न थी। फरिस्ता जैसे हमारे देश की सस्कृति और परपरा का अज्ञान प्रदर्शित करने वाले मुस्लिम लेखको के ऐसे भ्रमात्मक वर्णनों ने ही हमारे इतिहास को बहुत विकृत रूप दे दिया है और उनके अध्ययन करने वाले एकांगी या एक दृष्टि वाले युरोपीय और एतद्देशीय कुछ विद्वान भी देश के राष्ट्रीय इतिहास को विद्रूप-रूप मे उपस्थित करने का प्रयत्न करते रहते हैं।

चित्तौड के राजा रतनसेन और उसकी रानी पद्मिनी के अस्तित्व को ही इनकार करने वाले हमारे देश के एक बहुत बडे इतिहासविद् विद्वान् डॉ कालिका रजन कानूनगो हैं, जिन्होने इस विषय को लेकर बगला मे कई लेख लिखे हैं तथा 'स्टडिज इन राजपूत हिस्टरी' नामक एक पुस्तिका भी अग्रेजी में प्रस्तुत की है। इस पुस्तिका का पहला ही निबन्ध पद्मिनी की कहानी को कल्पित सिद्ध करने के लिए लिखा गया है। डॉ कानूनगो इतिहास के वहुत बड़े विद्वान् हैं, उनका मुस्लिम-कालीन इतिहास का अध्ययन वहुत गहरा और बहुत चिन्तन-पूर्ण है। राजस्थान के मध्यकालीन इतिहास का भी उनका ज्ञान बहुत बढा-चढा है। इतिहास-विषयक इनके मार्मिक अध्ययन और अनुसन्धान के विषय में हमारी वहुत समादरपूर्ण कल्पना है। परन्तु, हमे कुछ सकोच के साथ यह मानना पडता है कि डॉ. कानूनगो के पद्मिनी-विषयक सारे तर्क-वितर्क भ्रमोपादक हैं और केवल मुस्लिम तवारीखो के एकागी अध्ययन के कारण असगति प्रकट करने वाले हैं। राजस्थान की परपरागत जनश्रुतिया और सास्कृतिक प्रवाहो का उन्हे बहुत कम परिचय मालूम देता है। इस बारे मे हमने कुछ तो, अपने इससे पूर्व लिखित, पद्मिनी चउपई विषयक 'एक पर्यालोचन' वाले लेख में, इनके तर्को का उल्लेख किया ही है; पर, हमें अब यहा पर भी इस बारे मे कुछ विशेष कहना आवश्यक प्रतीत हो रहा है। डॉ. कानूनगो ने रत्नसिंह और पद्मिनी विषयक कहानी को सर्वथा कल्पित सिद्ध करने के लिए अपने उक्त निबन्ध में कई ऐसे तर्क उपस्थित किए हैं जो सर्वथा भ्रमोत्पादक तो हैं ही पर साथ मे जिन प्रमाणो के आधार पर वे अपना मन्तव्य सिद्ध करना चाहते हैं, वे प्रमाण स्वय उनके मन्तव्य के विरुद्ध जाते हैं। हम उनमे से कुछ का विचार यथा-प्रसग यहा करना चाहते हैं। हमारा राजस्थान-विषयक इतिहास का जो अल्प-स्वल्प अध्ययन है और जिसका हमने केवल तटस्थ भाव से मनन किया है, उसके आधार पर हमारा यह श्रद्धापूर्ण विश्वास है कि चित्तौड के राजा रतन-सेन और उसकी रानी पद्मावती का ऐतिहासिक अस्तित्व उतना ही सुनिश्चित हैं जितना कि दिल्ली के सुलतान अलाउद्दीन खिलजी का है।

डॉ० कानूनगो फरिस्ता के एतद्विषयक उल्लेख को अपने तर्क को ठीक बताने के लिए एक प्रमाण के रूप मे प्रस्तुत करते हैं। वे कहते हैं कि पद्मिनी की कहानी इसलिए कल्पित है कि फरिस्ता जैसे खोजी इतिहासकार ने, जिसने अपने इतिहास के साधन जुटाने की दृष्टि से बहुत कुछ परिभ्रमण किया था और शायद राजस्थान का भी दौरा किया था और वहां के लोगो से जानकारी प्राप्त की थी, चित्तौड़ के वर्णन में कही पद्मिनी का नामोल्लेख नही किया, बल्कि उसने तो उस नारी को राजा की बेटी लिखा है[1], इत्यादि। यह बडा विचित्र तर्क है कि किसी अज्ञान लेखक ने, अपनी भ्रमपूर्ण जानकारी के आधार पर, किसी व्यक्ति के वास्तविक नाम के बदले किसी अन्य व्यक्ति का उल्लेख कर दिया हो और तत्सम्बन्धी वृत्तान्त को अन्यथा रूप में लिख दिया हो तो, वह उल्लेख अन्यान्य प्रामाणिक आधारो पर स्थापित तथ्यभूत वृत्तान्त को कल्पित सिद्ध करने मे एक प्रमाण समझा जाय। फरिस्ता के सिवा अन्य अनेक प्राचीन एव अधिक प्रमाणभूत उल्लेखो से यह सुनिश्चित है कि पद्मिनी चित्तौड के राजा रतनसेन की रानी थी, न कि बेटी। अतः फरिस्ता का यह कथन सर्वथा भ्रमपूर्ण और अज्ञान-द्योतक है। उसके कथन को एक खोजी विद्वान् का कथन मानना उतना ही भ्रमपूर्ण है जैसा कि उसका स्वय का कथन। फरिस्ता ने किसी छान-बीन के आधार पर ऐसा उल्लेख किया हो, ऐसा किसी तरह प्रतीत नही होता। किसी अनभिज्ञ जन द्वारा उसने यह बात सुनी और लिख डाली; बस, इतना ही इसका मूल्य है। फरिस्ता राजपूताना मे भी घूमा था और यहा से अपने इतिहास की सामग्री जुटाने का उसने प्रयत्न किया था, ऐसा कोई प्रमाण उसका इतिहास पढने से ज्ञात नही होता। वह सुदूर दक्षिण में अधिक रहा, जहा राजस्थान के प्राचीन इतिहास के प्रसगो का उसे ज्ञान प्राप्त होने की कोई सभावना नही थी। वहाँ मुसलमानी लेखको द्वारा लिखे गए इतिहासो को पढ-पढ कर उसने अपना वह बडा इतिहास लिखा। हिन्दु विद्वानो के ससर्ग में आने का उसका कोई प्रसंग ही नही था, न वह वैसा कोई अधिकारी था जिससे उसको ऐसी घटनाओ के वारे में उचित जानकारी प्राप्त करने की आवश्यकता महसूस हुई होती। जैसा कि कानूनगोजी ने अनुमान किया है, यह तर्क सभव हो सकता है कि उसने रणथभोर वाले हमीरदेव की पुत्री देवलदेवी के सबध को चित्तौड के राजा के प्रसग से मिला दिया हो; और, यदि ऐसा हो तो फरिस्ता के इतिहास की अज्ञानता एव अप्रामाणिकता और भी अधिक पुष्ट और स्पष्ट हो जाती है।

---

१ देखिए—'स्टडीज् इन राजपूत हिस्ट्री' पृ० ८-९।

फरिस्ता के उल्लेख को, जिसमें उसने पद्मिनी के प्रसंग के सकेत मे उसे चित्तौड के राजा की पुत्री लिखा है, स्वर्गीय म. म. गौरीशकरजी ओझा ने अपने 'राजपूताने के इतिहास' ग्रन्थ मे, अप्रामाणिक माना है और लिखा है कि— 'फरिस्ता ने उसमे (अर्थात् पदमावत वाली कथा मे) कुछ-कुछ घटा-बढी कर ऐतिहासिक रूप में उसे रख दिया है और पद्मिनी को राणी न कह कर बेटी बतलाया है। फरिस्ता का यह लेख हमे तो प्रामाणिक नही मालूम होता।' (राजपूताने का इतिहास, पहली जिल्द, पृष्ठ ४९३)।

म. म ओझाजी के इस कथन को डॉ० कानूनगोजी अपर्यालोचित (अन्क्रिटीकल) मानते हैं। पर, इसके विरुद्ध किस आधार पर वे फरिस्ता के कथन को अधिक प्रामाणिक समझते हैं, यह कुछ नही कहते। यह हम भी मानते हैं कि फरिस्ता ने कही किसी से सुनी-सुनाई बात के आधार पर पद्मिनी को चित्तौड़ के राजा की बेटी लिख दिया, उसने कोई खास खोज नही की; बस, इतना ही उसके उल्लेख का तात्पर्य है। उसको प्रामाणिक कहने वालो के पास अन्य कोई प्रमाण नही है, अत: इस विषय मे फरिस्ता के कथन को महत्त्व देना सर्वथा अपर्यालोचित और अनैतिहासिक तर्क है।

हमें यह पढ़ कर और भी आश्चर्य होता है कि कानूनगोजी अपने इसी निबन्ध मे, आगे चल कर, रणथंभोर वाले वीर हमीर की पुत्री देवलदेवी वाली घटना को भी अनैतिहासिक बतलाते हैं क्योंकि उसका उल्लेख किसी मुसलमान इतिहासकार ने नही किया। हम इस कुतर्क का निरसन अपने हमीर महाकाव्य वाले पर्यालोचन मे कर रहे हैं, अत यहां अधिक कुछ कहने का उचित प्रसग नही है।

फरिस्ता के सम-सामयिक, परन्तु कुछ पूर्ववर्ती, महान् लेखक अबुल-फजल ने आइने-अकबरी नामक अपनी सर्वश्रेष्ठ और जगविख्यात पुस्तक मे चितौड के इस प्रसग का सक्षेप मे वर्णन किया है, जो सर्वथा सगत और तथ्यभूत बातें प्रकट करता है। यह सब कोई जानते हैं कि फरिस्ता की अपेक्षा अबुल फज़ल का ज्ञान और अधिकार बहुत बडा था। वह राजस्थान और राजपूतो के इतिहास की जानकारी प्राप्त करने मे सबसे अधिक समर्थ था। वह हिन्दु जाति के सर्व प्रकार के वर्ग और सप्रदायो के श्रेष्ठ व्यक्तियो तथा विद्वानो के घनिष्ठ सपर्क मे रहता था। मेवाड के राजवश के प्राचीन गौरव और इतिहास का उसे यथेष्ट ज्ञान था। वह अन्यान्य मुसलिम लेखको की तरह केवल इधर-उधर की सुनी-सुनाई बातो को, अपने खयालो और इरादो के अनुसार, तोड-मरोड़ कर

लिखने वाला चापलूस लेखक नही था। वह महान् ज्ञानपिपासु, सत्यान्वेषी, तथ्य-खोजी और अपने समय का अत्यन्त असाधारण विद्वान् था। अबुल फजल का यह वर्णन इस प्रकार है—

"प्राचीन वृत्तांतो मे लिखा है कि दिल्ली के बादशाह सुलतान अलाउद्दीन खिलजी ने सुन रखा था कि मेवाड़ के राजा रावल रतनसी की स्त्री बहुत रूपवती है। उसने उसकी मांग की, परंतु अस्वीकृत कर दिए जाने पर अपनी इच्छा पूरी करने के लिए उसने एक फौज के साथ चित्तौड़ पर चढाई कर दी। एक अरसे तक उस स्थान पर घेरा डाले रहने पर जब कोई नतीजा न निकला तो उसने कपट का मार्ग अपना कर सुलह और मित्रता का प्रस्ताव आगे रखा। राजा ने तुरत ही अपनी सहमति प्रकट कर उसे जश्न का न्यौता दिया। अपने चुनिंदा साथियो को लेकर सुलतान ने किले मे प्रवेश किया और आमोद-प्रमोद के वातावरण मे दोनों की भेंट हुई। परतु, अवसर पाते ही वह राजा को पकड कर वहाँ से ले आया। कहते हैं, सुलतान के नौकर-चाकरों की सख्या १०० थी तथा सिपाहियो के वेश मे ३०० चुनिंदा साथी साथ थे। राजा की फौज एकत्रित होती इससे पहले ही विलाप करते हुए उसके लोगो के बीच से, उसे जल्दी से बादशाह के डेरे की तरफ ले जाया गया। अपनी इच्छा को मनवाने हेतु बादशाह ने राजा को कड़ी कैद मे रक्खा। उसे बहुत सताया गया इसलिए राजा के विश्वासपात्र मन्त्रियो ने बादशाह से याचना की कि उसके प्रेमपात्र को सौंप देने के अतिरिक्त उसके हरम के लायक अन्य स्त्रियाँ भी उसके पास भेज दी जावेंगी। उन्होने उस धर्मपरायण नारी से एक जाली पत्र भिजवा कर उसकी आशकाओ को भी बहला कर शांत कर दिया। बादशाह प्रसन्न हुआ और राजा पर बल-प्रयोग के बजाय उससे नरम व्यवहार करने लगा। ऐसा वर्णन मिलता है कि ७०० चुने हुए सिपाहियो को जनाने लिबास में डोलियो मे बैठाकर बादशाह के खेमे की ओर रवाना कर दिया गया तथा यह घोषणा कर दी गई कि रानी अपनी बहुत-सी दासियो के साथ शाही खेमे को प्रस्थान कर चुकी है। खेमे के निकट आने पर यह इच्छा व्यक्त की गई कि बादशाह के निवास-स्थान मे प्रविष्ट होने से पूर्व रानी राजा से भेंट करना चाहती है। अपनी सुरक्षा के मोहात्मक स्वप्न के चक्कर मे पड कर बादशाह ने भेंट की अनुमति प्रदान कर दी; इसी समय सिपाहियो ने अवसर का लाभ उठा कर अपना भेष बदला और वे राजा को छुडा लाए। राजपूतो ने पीछा करने वालो का बडी मर्दानगी से बारबार मुकाबला किया और राजा के दूर निकल जाने तक बहुतो को मौत के घाट पार उतार दिया। अंत में, गोरा और

बादल चौहानो ने मृत्युपर्यन्त युद्ध किया जिससे सर्वत्र जय-जयकार के बीच रावल सकुशल चित्तौड पहुँच गया। घेरा डाले रहने मे बडी कठिनाइयों को सहन न कर सकने के कारण तथा इसे निरर्थक जानकर बादशाह वापस दिल्ली लौट आया। कुछ समय पश्चात् उसने वापस इसी योजना पर दिलजमी की, परतु हार कर लौट आया। इन आक्रमणो से उकता कर रावल ने सोचा कि बादशाह से मुलाकात करने से शायद कोई सबध-सूत्र बँधें और इस प्रकार इस स्थायी कलह से वह छुटकारा पा सके। एक बागी के बहकावे मे आकर चित्तौड से ७ कोस दूर एक स्थान पर वह बादशाह से मिला, जहाँ छलपूर्वक उसका वध कर दिया गया। इस घातक घटना के पश्चात् उसके वंशज अरसी को गद्दी पर बैठाया गया। सुलतान ने चित्तौड़ को पुन' घेर कर उस पर अधिकार कर लिया। राजा लड़ते-लडते मारा गया तथा सभी नारियाँ स्वेच्छा से अग्नि मे जल मरी।"

(कर्नल जेरेट के अग्रेजी अनुवाद से अनूदित 'आइने-अकबरी' भाग २, पृ० २७४-२७५)

अबुल फज़ल के इस वर्णन के साथ हेमरत्न द्वारा वर्णित घटना का बहुत कुछ साम्य दिखाई देता है। अबुल-फजल कहता है कि चितौड वाली घटना का यह वर्णन 'पुराने वृत्तान्तो के आधार पर' आलेखित है। इससे स्पष्ट ज्ञात होता है कि उसको इस प्रसग के वर्णन करने वाले पुराने उल्लेख और प्रमाण अवश्य मिले थे। अबुल फजल के वर्णन में जायसी की पदमावत की कोई छाया नही मिलती—परतु, हेमरत्न की पद्मिनी चौपई के कथनो के साथ उसका बहुत साम्य है। इसका मतलब यह नही है कि अबुल फज़ल ने हेमरत्न की रचना को देखा हो या उसका आधार लिया हो, परतु इससे यह स्पष्ट हो जाता है कि हेमरत्न के पहले भी राजस्थान मे पद्मिनी की कथा-विषयक प्राचीन लिखित सामग्री विविध रूप मे यत्र-तत्र उपलब्ध थी, जिसके आधार पर जायसी ने और हेमरत्न ने अपनी-अपनी रचनाओ का अपने-अपने ढग से निर्माण किया। हमने इसके प्रमाण-स्वरूप अपने ऊपर वाले पर्यायलोचन में हेमरत्न द्वारा उद्धृत प्राचीन छप्पय आदि पद्यो का उल्लेख किया ही है। अतः इससे यह पूर्णतया निश्चित है कि जायसी के पूर्व पद्मिनी की कथा सर्व-विश्रुत थी।

इस प्रकार जब फरिस्ता के पहले होने वाले सुदूर उत्तर भारत के मुस्लिम कवि जायसी, राजस्थानी के जन परम्परा के मर्मज्ञ कवि हेमरत्न और मुगल सम्राट् अकबर के शाही दरबार के मुख्य एव अधिकारी लेखक अबुल फज़ल

ने पद्मिनी को राजा रतनसेन की रानी के रूप मे उल्लिखित किया है तब फरिस्ता ने उसे राजा की पुत्री के रूप में जो आलेखित किया है, वह सर्वथा निर्मूल सिद्ध होता है।

फरिस्ता के समान ही कर्नल टॉड को भी एक ऐसा ही कोई भ्रमात्मक आधार मिल गया मालूम देता है, जिससे उसने पद्मिनी को रावल रतनसेन या रतनसिंह के बदले लखमसी के चाचा भीमसी (भीमसिंह) की पत्नी लिखा है और उसे सिंहलद्वीप के चौहान राजा हमीर की पुत्री के रूप मे आलेखित किया है। पद्मिनी और रतनसेन की सत्ता को अस्वीकार करने वाले विद्वानो को यह भी एक उनके कथन को पुष्ट करने वाला प्रामाणिक-सा उल्लेख प्रतीत होता है। म० म० ओझाजी ने अपने ग्रन्थ मे टॉड के इस उल्लेख को सर्वथा भ्रमात्मक सिद्ध कर दिया है इसलिये इस विषय में इसका यहाँ पुनरुल्लेख करना अनावश्यक है। ओझाजी ने कहा है कि टॉड को भाटों द्वारा ऐसी बहुत-सी असगत बाते प्राप्त हुई थी और जिनको उसने, अन्यान्य प्रमाणो के अभाव में विश्वसनीय मानकर, अपने इतिहास मे उल्लिखित करदी। जिस तरह टॉड का यह उल्लेख कि पद्मिनी भीमसिंह की पत्नी थी भ्रामात्मक है, उसी तरह फरिस्ता का भी उक्त उल्लेख कि वह राजा रतनसेन की पुत्री थी सर्वथा भ्रमात्मक ही है।

*

भाटो, चारणों और अन्य कवियों आदि-जैसे राजस्थान के प्राचीन प्रवादों के ज्ञाताओ को अपने पूर्वजो के वश-परम्परागत स्मरणों और कथनो के द्वारा मूल बात तो अच्छी तरह ज्ञात होती रहती थी कि चित्तौड़ की रानी पद्मिनी के लिये दिल्ली के बादशाह अलाउद्दीन ने चित्तौड़ पर भयकर आक्रमण किया था, तथा बादशाह ने छल-कपट करके चित्तौड़ के राजा को पकड कर कैद कर लिया था, और फिर गोरो-बादल जैसे शूरवीर राजपूतो ने वैसे ही छल-कपट का प्रयोग करके राजा को छुड़ाकर बादशाह को बुरी तरह वहाँ से लौटने के लिये विवश किया था—इत्यादि; परन्तु, समय के बीतने पर और चित्तौड पर उसके बाद भी मुसलमानो द्वारा कई बार किये गये ऐसे दुष्ट आक्रमणो के कारण, उन भाटों आदि की स्मृतियो और श्रुतियो में, समय और व्यक्तियो आदि के नामो के बारे मे उलट-सुलट अथवा विसगत वचनो और कथनो का पाया जाना सर्वथा स्वाभाविक है। समकालीन माने जाने वाले उल्लेखों और प्रमाणो मे भी ऐसी अनेक बातें मिलती हैं जो परस्पर विसंगत ज्ञात होती हैं, तो फिर सैंकडो वर्षों से चली आती हुई पुरानी बातो में ऐसे गौण कथनो मे कोई

और महाराष्ट्र जैसे आर्य-प्रदेश की भी आज वही स्थिति होती जो सिन्ध, पंजाब, काश्मीर और पूर्व-बंगाल की हुई और जिसके कारण प्राचीन भारत का असल आर्य-प्रदेश पाकिस्तान बन कर प्रबल शत्रु के रूप मे सामने आया। इसलिये पद्मिनी के अस्तित्व और पुण्य-जीवन-स्मरण का विलोप करने वाला बुद्धि-भ्रंशक प्रयास, हमे भारत के राष्ट्रीय गौरव के इतिहास के एक सर्वोत्तम प्रकरण को मिटा देने जैसे कुत्सित अतएव तिरस्करणीय लगता है। अत: हम हमारे मान्य विद्वान् मित्रो को कुछ अप्रिय लगने वाली बातो का दोष ओढ कर भी, इस लेख को लिखने मे प्रवृत्त हुए हैं।

यहाँ पर हमारा प्रस्तुत वक्तव्य-विशेष यह है कि डॉ० कानूनगो की पुस्तिका को खास मननपूर्वक देखने से उनके द्वारा इस विषय मे उत्थापित किये अनेक तर्कों मे से कुछ तर्क तो तर्क के रूप मे ठीक मालूम देते हैं, परन्तु, उन्होने अपने तर्कों पर से जो निष्कर्ष निकाले है उनका कुछ ही अंश हमें स्वीकार्य स्वरूप लगता है, और बहुत कुछ अंश सर्वथा भ्रमोत्पादक है। उनके कई तर्क ऐसे हैं जो शुद्ध तर्क की कोटि मे न आकर तर्काभास की कोटि के हैं और ऐसे तर्काभास कोटि वाले उल्लेख ही प्राय: इनके कथन मे अधिक दिखाई देते हैं। डॉ० कानूनगो ने अपना निबन्ध बडे परिश्रम-पूर्वक तैयार किया है और इस विषय के जितने आधार उनको उपलब्ध हुए, उन सबका परीक्षण करके उन्होने अपना मन्तव्य सिद्ध करने का प्रयत्न किया है। पर, उनके ये आधार कुछ तो स्वयं भ्रमात्मक और गलत हैं तथा कुछ का अर्थ उन्होने गलत समझा है। अतः उन आधारो पर जो निष्कर्ष उन्होने निकालना चाहा है वह तर्कसंगत न होकर तर्काभास का सूचक है। उनका यह आग्रही मत बन गया है कि पद्मिनी की यह कथा केवल जायसी द्वारा ही प्रसूत हुई है, अत इस विषय के जो भी साधक-बाधक प्रमाण उनको उपलब्ध हुए उन सबका उपयोग उन्होने अपने मन्तव्य की पुष्टि करने के अर्थ मे ही किया है। ऐसे मन्तव्यो को देख कर हमे महान् तत्त्वद्रष्टा आचार्य हरिभद्रसूरि की इस उक्ति का स्मरण हो आता है कि—

आग्रही बत निनीषति युक्ति
यत्र, तत्र मतिरस्य निविष्टा

अर्थात् आग्रही विद्वान् अपनी युक्ति को उसी तरफ खीचना चाहता है जिधर उसकी मति चिपकी रहती है।

कुछ पुनरुक्ति-दोष को स्वीकार करके भी हम यहा पर इस विषय मे डॉ. कानूनगो के तर्कों अथवा तर्काभासो का क्रम से विचार करना चाहते हैं।

थी। हमारी अपनी आँखो की अत्यन्त क्षीण शक्ति के कारण हम विशेषकर स्वय पढ़ने मे और लिखने मे प्रायः असमर्थ हो चुके हैं अतः अन्य मित्रो द्वारा कुछ वचवा-पढवा कर अपने अभीष्ट विषय का सार समझ लेने का प्रयास करते रहते हैं। प्रस्तुत लेख लिखते समय हमने डॉ. कानूनगो की उक्त पुस्तिका का कुछ विशेष रूप से मनन किया और इस विषय से सम्वद्ध कुछ अन्यान्य नए-पुराने उल्लेखो का भी मनन किया। म. म ओझाजी ने जो राजस्थान के इतिहास के एक सर्वश्रेष्ठ विद्वान थे और जिन्होंने अपने समय मे ज्ञात व उपलब्ध प्रमाणो का सूक्ष्मता के साथ निरीक्षण कर अपना जो अभिमत प्रदर्शित किया था, उसको भी पुनः मनन पूर्वक देखा तो हमें प्रतीत हुआ कि इस विषय मे उपस्थित किये गये प्रमाणो की ठीक-ठीक परीक्षा नही हुई है और कुछ परस्पर वाधक एव भ्रमात्मक उल्लेखो के आधार पर इस सारे वृत्तान्त को विकृत रूप में उपस्थित किया गया है।

*

पद्मिनी से सम्बद्ध चित्तौड़ के इतिहास की घटना का महत्त्व हमारे देश के इतिहासज्ञ विद्वान वहुत कम समझ रहे हैं। उनके ज्ञान में इस घटना का तादृश आकलन नही हुआ है। यह घटना केवल चित्तौड़ राज्य के उस समय की सामान्य प्रादेशिक घटना की कोटि की नही है। यह घटना सारे भारत के राष्ट्रीय इतिहास का प्रवाह वदलने वाली एक असाधारण घटना थी। भारत के हृदय रूप दिल्ली पर कब्जा जमा लेने के वाद वहाँ के मालिक वनने वाले मुसलमान शासको का मुख्य एव चरम लक्ष्य क्या रहता था, यह रहस्य राजपूतो को समझ में इसके पहले ठीक-ठीक नही आया था। राजपूत समझते रहे कि जैसा कि हर कोई प्रवल शासक अपनी सत्ता वढ़ाने के लिए अपने पड़ौसी राज्यो पर आक्रमण करता रहता है और लड़-झगड़ कर अपनी सत्ता को सुदृढ़ करना चाहता रहता है इसी तरह दिल्ली के मुसलमान शासक भी अपनी सत्ता को स्थिर और विस्तृत करने का प्रयत्न करते रहते हैं और वे अपने आसपास के राज्यो पर आक्रमण करते रहते हैं। उन आक्रमणो का सामना करना प्रत्येक राज्य के रक्षक शासक का कर्त्तव्य होता है और वह यथाशक्ति वैसा करता चला आया है। यह राज्यसत्ता का एक सर्वमान्य और सर्वव्यापी सिद्धान्त है। क्या हिन्दु क्या मुसलमान सभी शासको की यह सामान्य राजनीति समझी जाती रही। परन्तु, अलाउद्दीन के भारतव्यापी क्रूर आक्रमणोका उद्देश्य केवल इस प्रकार की सामान्य राज्यसत्ता वढ़ाने वाली सीमा तक ही सीमित नही था; उसका मुख्य उद्देश्य भारत की प्राचीन संस्कृति को सर्वथा नष्ट कर देने का भी था। वह

क्रूरातिक्रूर अत्याचारों द्वारा अपनी दानवी शक्ति बढ़ाता जा रहा था और उसके बल पर भारत के राष्ट्रीय धर्म, गौरव और इतिहास का सर्वनाश करना चाहता था। इसीलिए वह हिन्दु जाति के धर्म-स्थानो—देव-मन्दिरो को ज़मी-दोज करवा रहा था, अपने बर्बर सैनिकों द्वारा भारत के गाव-गांव मे अत्याचारो की अग्नि की ज्वालाओ मे भारतीय जन-जीवन को झुलसा रहा था, वह गावो और शहरो की सम्पत्ति लूट कर तथा वहां के हजारों लाखो निवासीजनो को या तो मौत के घाट उतरवा रहा था या उन्हें कैदी बना कर बकरियो व भेडों की तरह रस्सो से बाँध कर गांवों व जगलो मे घुमाता-भटकाता अन्य प्रातो, प्रदेशो या अन्य मुल्कों मे दासो के रूप में बिकवाता रहा था तथा कुलीन घरो की सुन्दर स्त्रियो को पकड़वा कर उन्हें अपने दुराचारी सरदारो—सैनिको में बँटवाया करता था और इस तरह समग्र हिन्दु जाति के जीवन को नष्ट-भ्रष्ट कर, इस्लाम के नाम पर उनकी कुर्बानी करवा रहा था। अलाउद्दीन के चित्तौड पर किए गए आक्रमण का भी यही मुख्य उद्देश्य था।

चित्तौड का राजवश हिन्दु जाति का एक सर्वश्रेष्ठ राजकुल और आदर्श-भूत राजपूत राजघराना था। देवयोग से उस राजघराने की जो राजरानी थी वह गुण और रूप में उस समय हिन्दु-नारी का सर्वश्रेष्ठ प्रतीक रूप थी। हिन्दु जाति के गौरवनाशक अलाउद्दीन को जब यह ज्ञात हुआ कि चित्तौड के राजघराने में ऐसी रानी है जो पद्मिनी के अनुपम लक्षणो और गुणो से परिपूर्ण है, तो उसने चित्तौड के राज्य को नष्ट करके उसकी राजरानी को बन्दी बना कर, अपने दुराचारपूर्ण दुष्ट हरम-रूप नरकागार मे डाल कर उसकी दुर्गति करने का दुष्ट सकल्प किया। वह अपनी प्रबल सैन्य शक्ति के साथ चित्तौड़ पहुचा। मेवाड के राजपूतो ने अपनी सर्व शक्ति से उसका डट कर सामना किया। यह तो निश्चित ही था कि उसकी वैसी दानवी शक्ति के सामने मेवाड के मुट्ठी-भर राजपूत कितने दिन टिक सकते थे ? पर, उन मुट्ठीभर राजपूतो ने भी अपने कुल की मर्यादा की रक्षा के लिए और समग्र आर्य नारीवर्ग की प्रतीक-भूत अपनी राजरानी के सतीत्व की रक्षा के निमित्त जो पराक्रमपूर्ण वीरता दिखा कर अपने सारे राजवश का बलिदान कर दिया, उसकी तुलना बतलाने वाला भारत के समग्र इतिहास में अन्य कोई उदाहरण नही मिलता।

चित्तौड के इस अत्यत सकटमय और दुःखद प्रसग ने राजपूत जाति को अद्भुत रीति से जागृत किया, उसको नई चेतना प्रदान की, चित्तौड में घटी इस घटना ने एक ऐसे शूरवीर नये राजवंश को जन्म दिया, जिसने उसके बाद के ५०० वर्षों तक भारत के राष्ट्रीय गौरव और धर्म की रक्षा के लिए

मूलाधार क्या है ? बुद्धिजनित इस जिज्ञासा की सतुष्टि के लिए हम यथाशक्य प्रश्न-विशेष के सर्वप्रथम मूलाधारो को टटोलना चाहते रहते हैं। द्वितीय, तृतीय श्रेणि के आधारो पर लिखे गये निर्णयो या विचारो की अपेक्षा प्रथम श्रेणी के मूलाधारो का अवलोकन और अध्ययन करने की वृत्ति तीव्र रहती है। पर, जब वैसे आधारो की प्राप्ति की असम्भावना प्रतीत होती है तब फिर द्वितीय, तृतीय श्रेणी के आधारों के पूर्वापर सम्बन्ध की संगति लगाने का प्रयत्न करना उचित लगता है। इसी दृष्टि से, प्रस्तुत समस्या के विषय मे हमने कुछ गहराई से विचार करना चाहा तो हमे अमीर खुसरो के उक्त प्रसिद्ध ग्रन्थो के वारे मे कुछ मूलाधारभूत प्रमाणो के टटोलने की आवश्यकता महसूस हो गई। इसमे सवसे पहले तो हमे यह वात ज्ञात हो रही है कि डॉ. कानूनगो ने जिस विश्वास और दृढता के साथ यह कथन किया है कि अमीर खुसरो ने अलाउद्दीन के राज्यकाल के विषय मे **दो प्रमाणभूत इतिहास-ग्रन्थ** लिखे हैं और वे दोनो अंग्रेजी अनुवाद के रूप मे उपलव्ध हैं, यह कथन ही सर्वथा भ्रामक प्रतीत हो रहा है।

हमने डॉ कानूनगो के द्वारा दी गई जानकारी की जाँच के लिए इन ग्रन्थो का पता लगाना चाहा तो, हमे यह जानने को मिला कि अमीर खुसरो के 'तारीखे-अलाई' और 'खज़ाइन्-उल-फुतूह' ये दो अलग-अलग ग्रन्थ नही हैं परन्तु एक ही ग्रन्थ के दो नाम हैं अर्थात् एक ही ग्रन्थ इन दो नामो से प्रसिद्ध है, और इसका स्पष्ट उल्लेख अमीर खुसरो के उक्त ग्रन्थ का सर्वप्रथम परिचय कराने वाले, मुस्लिम इतिहासग्रन्थो के महान् विद्वान् और विश्वविश्रुत अंग्रेज लेखक सर हेनरी इलियट ने अपने इस विषय के मुख्य निवन्ध मे किया है। इलियट साहव ने स्व-सम्पादित 'दी हिस्ट्री ऑफ इन्डिया, एज़ टोल्ड वाइ इटस् ओन हिस्टोरियनस्' नामक प्रसिद्ध ग्रन्थमाला के तीसरे भाग में अमीर खुसरो की उक्त प्रसिद्ध पुस्तक का सविस्तार वर्णन और पूरा सार दिया है। इस निवन्ध का मुख्य नाम ही 'तारीखे-अलाई या खजाइन्-उल्-फुतूह' ऐसा दिया गया है और उसके परिचय का आरम्भ इस वाक्य से होता है कि—इन दोनो ही नामो से ज्ञात, गद्य में लिखे गये इस इतिहास का लेखक अमीर खुसरो है जिसका देहान्त १३२५ ई० सन् में हुआ था।*

---

* सर हेनरी इलियट ने उपर्युक्त ग्रन्थ के तीसरे भाग में अमीर खुसरो की उक्त रचना का परिचय निम्न लिखित रूप मे दिया है—

"इन [तारीखे अलाई अथवा खजाइन् उल-फुतूह] दोनों ही नामो से ज्ञात, गद्य में लिखे गये इस इतिहास का लेखक अमीर खुसरो है, जिसका देहात १३२५ ई.

असंगति पाई जाए तो उससे सारी मूल घटना ही कैसे कल्पित सिद्ध हो सकती है ? चित्तौड के इतिहास की इस घटना का मुख्य पात्र पद्मिनी थी; पद्मिनी ही इस सारी घटना का मूलभूत केन्द्ररूप थी इसलिए पद्मिनी का नाम और उसके निमित्त घटी घटना का विशिष्ट स्मरण राजस्थान के जन-जीवन मे सदैव बराबर जागृत रहता हुआ सैकडों वर्षों तक अव्यवहित रूप से चला आता रहा था। इसलिये उसी केन्द्रभूत नाम और उससे सम्बद्ध घटना के मुख्य पात्र के विषय मे लोको मे जो विविध प्रकार के कवित्त-छप्पय आदि प्रचलित थे उनके आधार पर किसी अज्ञातनामा कवि-कृत गोरा-बादल कवित्त, जायसी-रचित पदमावत, हेमरत्न-रचित गोरा-बादल पद्मिनी चउपई, जटमल नाहर कृत गोरा-बादल चउपई आदि कृतियो की रचनाएं निर्मित हुई; तथा इसी तरह अबुल फजल, फरिस्ता आदि मुस्लिम इतिहासकारो ने उस वृत्तान्त को अपने ग्रन्थो मे उल्लिखित किया। पर, इस नाम और घटना की अनैतिहासिकता बतलाने वाले विद्वानो का मुख्य तर्क यह है कि यह कथा सर्व-प्रथम कवि जायसी द्वारा ही कल्पित की गई है। इसके पहले इस कथा के अस्तित्व का सूचक कोई प्रमाण अभी तक उपलब्ध नही है। यह ठीक है कि तर्क के रूप मे यह कथन कुछ बल रखता है क्योकि जब तक जायसी के पूर्व का कोई खास लिखित आधार उपस्थित नही किया जाता तब तक इस तर्क को सर्वथा असिद्ध साबित नही किया जा सकता।

डॉ. कानूनगो जैसे इतिहास के मर्मज्ञ और आलोचक विद्वान का यह एक दृढ और आग्रही मत बन गया है कि पद्मिनी की कथा का सर्जन जायसो की कल्पित घटना के आधार पर ही हुआ है, उसके पीछे कोई ऐतिहासिक आधार नही है, इत्यादि।

हमने इन पक्तियो के लिखने के पहले, 'पद्मिनी-विषयक एक पर्यालोचन' वाले अपने लेख मे, सरसरी तौर से राजस्थान के इतिहास के विशिष्ट मर्मज्ञ एवं हमारे परम मित्र डॉ. दशरथजी शर्मा के उल्लेखो के अनुसार डॉ. कानूनगो के कथन के बारे मे कुछ विचार लिख डाले हैं और वह लेख दो-तीन महीने पहले ही पूरा छप चुका है। बाद में, हमें रत्नसिंह के बारे मे कुछ उल्लेख मिले जो इस विषय पर कुछ नया प्रकाश डालने वाले प्रतीत हुए, अतः हमने अपने उस पर्यालोचन वाले लेख के अनुसन्धान स्वरूप, परिशिष्ट के रूप मे इस प्रकरण को लिखना योग्य समझा। रत्नसिंह-विषयक इस समस्या का लिखना प्रारम्भ करने के पहले हमारी यह कल्पना नही थी कि पद्मिनी के विषय मे और कुछ विशेष रूप से लिखना आवश्यक होगा। इस समस्या पर विशेष रूप से विचार करने से पूर्व हमने डॉ. कानूनगो की उक्त पुस्तिका को विशेष मनन के साथ नही पढी

उनके तर्कों मे सब से वडा और मुख्य तर्क यह है कि जायसी के पहले का पद्मिनी-विषयक कोई उल्लेख किसी इतिहास मे नही मिलता; अतः यह कथा जायसी द्वारा निर्मित एक कल्पित कथा है, न कि किसी ऐतिहासिक वृत्तान्त की सूचक है।

डॉ० कानूनगो का यह कथन तो ठीक है कि जायसी के पहले इतिहास-विषयक किसी मुस्लिम पुस्तक मे इसका स्पष्ट उल्लेख नही मिलता पर, सभी इतिहास-विद् यह अच्छी तरह मानते हैं कि किसी भी ऐतिहासिक घटना का किसी पुस्तक-विशेष मे न मिलना किसी विशिष्ट घटना का निषेधक प्रमाण नही हो सकता, जब तक कि उसका निषेध करने वाला वैसा ही कोई असन्दिग्ध या प्रबल प्रमाण नही उपलब्ध होता। अतः डॉ० कानूनगो का यह उक्त तर्क, तर्क नही परन्तु, तर्काभास है।

डॉ० कानूनगो अपने तर्कों की पुष्टि में सर्व-प्रथम उन मुस्लिम इतिहासकारों के उल्लेख उपस्थित करते हैं जो अलाउद्दीन के समकालीन और उसके प्रत्यक्ष सपर्क मे रहने वाले अथवा उसके जीवन से सुपरिचित थे। इन लेखको मे सबसे मुख्य लेखक अमीर खुसरो है। डॉ० कानूनगो इसके विषय मे लिखते हैं कि "हिन्दुस्तान का तोता, अमीर-खुसरो अलाउद्दीन के चित्तौड़ पर आक्रमण के समय स्वय उपस्थित था। उसने अलाउद्दीन के राज्यकाल पर 'दो प्रामाणिक इतिहास' (bonafide history) लिखे हैं, जिनके नाम 'तारीखे-अलाई' एव 'खजाइन-उल-फुतूह' हैं। दोनो कृतियो के अंग्रेजी अनुवाद उपलब्ध हैं। 'तारीखे-अलाई' स्पष्टत· पहले की रचना है तथा अपेक्षाकृत अधिक सयत शैली मे लिखी गई है, जबकि 'खजाइन-उल-फुतूह' मे कृत्रिम शब्दाडम्बरो की भरमार है, जिसमे अलाउद्दीन द्वारा बनवाई इमारतो आदि का अधिक वर्णन मिलता है। 'तारीखे-अलाई' में हमें सुल्तान के दिल्ली से रवाना होने की तिथि, राजपूतो का बड़ी बहादुरी से मुकाबला, चित्तौड़ के पतन की तिथि (अगस्त २६, १३०३ ई.), राय का भाग निकलना तथा अंत मे आत्म-समर्पण कर देने का वर्णन मिलता है। यह बात ध्यान मे रखने योग्य है कि यद्यपि अमीर खुसरो प्रत्यक्ष-दर्शी था परन्तु उसने दैनिक घटनाओं का व्यौरा नही दिया है अपितु चित्तौड़ मे अलाउद्दीन के राज्यकाल के अन्त से संबधित समस्त घटनाओ और मेवाड़ के राजपूतो का केवल सक्षिप्त वर्णन, एक छोटे· से प्रकरण में दिया है। "खजाइन-उल-फुतूह' में चित्तौड़ के आक्रमण सबधी इन्ही घटनाओ का वर्णन कुछ अस्पष्ट ढंग से लिखा मिलता है।"

(स्टडीज़ इन राजपूत हिस्ट्री—डॉ० कालिकारञ्जन कानूनगो, पृ० ५-६)

डॉ० कानगो कहते हैं कि इन दोनों ग्रन्थो में दिए गए अमीर खुसरो के चित्तौड़ वाले युद्ध-वर्णन मे कही भी रानी पद्मिनी वाली बात का किंचित् भी सकेत नही मिलता है , और इसी तरह अमीर खुसरो ही के समकालीन इतिहास लेखक जियाउद्दीन बर्नी ने जो 'तारीखे फिरोजसाही' नामक पुस्तक लिखी उसमे भी अलाउद्दीन के चित्तौड वाले युद्ध के वर्णन में, पद्मिनी का कोई उल्लेख नही मिलता तथा इसी तरह उसका एक अन्य समकालीन इतिहासकार इसामी भी है, जिसने 'फुतूह्-उस्-सलातिन्' नामक कविता-बद्ध इतिहास लिखा है, उसने भी अलाउद्दीन के चित्तौड वाले युद्धवर्णन में पद्मिनी विषयक कोई उल्लेख नही किया। (वही, पृ० ६)

इन ग्रथो के आधार पर डॉ० कानूनगो अपना यह तर्क पुष्ट करते हैं कि चित्तौड़ वाले युद्ध के प्रसग मे पद्मिनी की बात के पीछे कोई तथ्य होता तो इन समकालीन लेखको ने उसका सकेत जरूर किया होता ।

इस तर्क के निरसन मे हम ऊपर लिख आये हैं कि ऐसे ग्रथो में किसी बात का उल्लेख न होना उस बात की असिद्धि नही मानी जाती । इन लेखको ने तो चित्तौड के राजा का भी नाम नही लिखा है, तो क्या कोई यह तर्क करें कि वहाँ के राजा का कोई नाम प्रसिद्ध नही था, अथवा यह तर्क किया जाय कि अमीर खुसरो, जो अपने मालिक के साथ उस लडाई में छह महीनो तक रहा था तिस पर भी वह, उस राजा का नाम बिल्कुल ही नहीं जान सका था; क्या ये तर्क ठीक समझे जायेंगे ? इसलिए हम मानते हैं कि पद्मिनी के अनस्तित्व को सूचित करने के लिए अमीर खुसरो आदि के इन अधूरे और विसकलित उल्लेखो को प्रमाण रूप मे उपस्थित करना कोई तर्क नही, तर्काभास है ।

वास्तव में, अमीर खुसरो का वर्णन ही बहुत अस्पष्ट और बडा भ्रमात्मक है । इस वर्णन मे परस्पर कई असगतिया हैं और कई मिथ्या एव मन:कल्पित बाते लिखी गई हैं ।

इस विषय मे सबसे पहले तो हमे यही प्रश्न विचारणीय लगता है कि अमीर खुसरो के नाम से प्रसिद्ध इन ग्रथो की इतिहास की दृष्टि से कितनी प्रामाणिकता मानी जाय ?

हमारे दीर्घकालीन अनुसन्धानात्मक अध्ययन और अनुभव के आधार से हमारी यह मति बन गई है कि इतिहास-विषयक किसी विशिष्ट उल्लेख या प्रमाण के विषय मे कोई विवादात्मक या शंकास्पद प्रश्न उठ खड़ा हो तो पहले यह जानकारी प्राप्त करना चाहिए कि प्रस्तुत विवादात्मक प्रश्न का

सर्वाग्रिम स्थान प्राप्त किया। चित्तौड के इसी पुनर्जन्म-प्राप्त महान् राजवश के प्रभाव के कारण राजस्थान के बाद वाले सभी राजपूत राज्य सशक्त हुए। उनमे देश और धर्म की रक्षा के लिए प्राणो की आहुति देने की एक अद्भुत वीरता का सचार हुआ। ये राजपूत अलाउद्दीन के बाद होने वाले दिल्ली के मुसलिम बादशाहो से लोहा लेना सीखे। ५०० वर्षों तक इन्होंने दिल्ली के भारतीय-सस्कृति-नाशक विधर्मी बादशाहो को सुख से नही सोने दिया। सारा भारत जब नि सत्त्व और निर्वीर्य होकर अपनी असमत्ता को खो बैठा था और उन विधर्मी और घातक बादशाहो के क्रूर दमन के नीचे दलित होकर दु खो से कराह रहा था, तब राजस्थान के ये मुट्ठीभर राजपूत-राज्य दिन-रात इन विधर्मी दुष्टो के कुकृत्यो का सामना करते रहे थे और उन्होने अपने देश और धर्म की रक्षा करते हुए भारत के अस्तित्व को बचाए रखा था। यदि चित्तौड के उन ध्वसावशेषो मे छिपे हुए पद्मिनी के पुण्य स्मरणों के स्फुलिंग प्रस्फुटित न होते तो मेवाड का यह प्रतापी राजवश पुनः प्रतिष्ठित न होता और न राजपूत राज्यो मे वह बल ही सचारित होता जो मेवाड़ के पराक्रमी सूर्यवंशी राजाओ द्वारा प्रसारित ज्योति से होता रहा है। उन हिन्दु-धर्म-विद्वेषी मुसलिम शासको की मुख्य नीति यही रही थी कि हिन्दुओ को क्रूर अत्याचारों द्वारा विवश करके उन्हे धर्म-भ्रष्ट किया जाय और सारे देश को मुस्लिम-धर्म का अनुयायी बना दिया जाय। राजस्थान के ये राजपूत राज्य ही ऐसे बच रहे थे जिनको अपने धर्म और राष्ट्र की रक्षा का सबसे अधिक कर्त्तव्य-भान था और वे उसके लिए अपना सर्वस्व बलिदान कर देने को सदैव तत्पर रहते थे। इन्ही राजपूतो के ऐसे वीरतापूर्ण कार्यों के कारण मुसलमान अपने मनसूबों को सफल नही कर पाये। और तो और, अकबर जैसा महान् मुगल सम्राट् भी अपनी पूरी शक्ति लगा देने पर भी मेवाड के महान् सूर्यवशी राणा प्रताप को अपने राष्ट्र-धर्म से विचलित नही कर सका और उसकी प्रखर-प्रताप-ज्योति को अपने विश्वग्रासी फुकार से नही बुझा सका। अत्यंत हिन्दुद्वेषी मुगल बादशाह औरगजेब भी इन राजपूतों की स्वराष्ट्रभक्ति को न हिला सका और इनके सरक्षण मे सुरक्षित हिन्दु जाति का सर्वनाश न कर सका। यदि चित्तौड की उस घटना के कारण राजपूतो मे नई चेतना न जागृत होती और उसी चित्तौड़ की भूमि मे पद्मिनी की रक्षा के लिए अपने प्राणो की प्रचण्ड आहुति देने वाले उन देवाशी राजपूत नर-नारियो की बची हुई बाल-सतानों से बाद में प्रसूत हमीर जैसे अनेक नर-वीरों का प्रादुर्भाव न हुआ होता तो उसके बाद आने वाली शताब्दियो में सारा उत्तर भारत, राजस्थान, मध्य-प्रदेश, गुजरात

इस उल्लेख से स्पष्ट है कि अमीर खुसरो ने अलाउद्दीन के शासनकाल का विसकलित इतिहास देने वाली केवल एक ही पुस्तक लिखी है, जो 'खजाइन्-उल-फुतूह' नाम की है। 'तारीखे-अलाई' नाम से उसने कोई अन्य स्वतत्र रचना नही की। मालूम देता है कि कुछ पिछले मुस्लिम लेखको ने 'खजाइन्-उल-फुतूह' जैसे क्लिष्ट नाम के बदले, 'तारीखे फिरोजशाही', 'तारीखे मुबारिक-शाही' जैसी पुस्तको के नामो के समान, इस पुस्तक को भी 'तारीखे अलाई' के सरल नाम से उल्लिखित कर दिया हो और उसकी कुछ हस्तलिखित किताबो मे भी इस सरल नाम का उल्लेख किया गया हो; और इसीलिये सर हेनरी इलियट को इस पुस्तक के दो नाम होने का उपर्युक्त स्पष्ट उल्लेख करना आवश्यक लगा है।

अलीगढ विश्वविद्यालय की ओर से 'खलजी कालीन भारत' नाम की एक पुस्तक प्रकाशित हुई है जिसका उद्देश्य, खलजी वश के शासनकाल से सबन्धित जितने इतिहास लेखक हुए हैं और उन्होने जो-जो पुस्तकें लिखी हैं उन सब का परिचय देने के साथ, उनके ग्रन्थो के तत्सबन्धित उल्लेखो के प्रामाणिक उद्धरणो का एकत्र सग्रह कर प्रकट करना है। इस पुस्तक मे अमीर खुसरो के 'खजाइन्-उल्-फुतूह' का परिचय देकर उसके उल्लेखो का भी प्रामाणिक

सन् मे हुआ था। इसमे सुलतान अलाउद्दीन खिलजी (जिसे उसने मुहम्मद शाह सुल्तान भी लिखा है) के आरंभिक राज्यकाल का रोचक वर्णन मिलता है, अर्थात् हिजरी ६९५ (१२९६ ई. सन्) में उसके गद्दी पर बैठने से लेकर हिजरी ७१० (१३१० ई० सन्) के अत मे मबार-विजय तक का वर्णन है। बहुत संभव है कि यह वही रचना है जिसको 'तारीखे अलाउद्दीन खिलजी' नाम से कुछ सामान्य इतिहासकारो ने उद्धृत किया है। परन्तु, यदि ऐसा ही है तो इसका सूक्ष्म अध्ययन नही किया गया है, क्योकि संकलन-कर्त्ताओ का बहुत-से उपयोगी तथ्यों पर ध्यान नही जा पाया है।

देखने पर ज्ञात होगा कि इस छोटे-से ग्रथ में, इसके वर्ण्य विषय से सम्बद्ध काफी जान-कारी मिलती है, विशेषकर उस समय की युद्धकला का जैसा वर्णन इसमे उपलब्ध होता है वैसा अन्य किसी ग्रंथ मे नही मिलता है। जिस शैली मे यह पुस्तक लिखी गई है वह प्राय क्लिष्ट है, क्योकि सारा ग्रथ एक-के-बाद एक, काल्पनिक मिलती जुलती बातों के सिलसिले पर निर्मित है, जैसा कि इसी लेखक की बाकीया-नकीया एवं इजाज-खुसरवी की भूमिका में तथा 'बदर-चाची' के गीतो में और मिरजा कातिल के वर्णनो में अथवा अन्य ऐसे ही अनेक ग्रन्थों में पाया जाता है, जहाँ वास्तविकता के बदले कल्पना की भरमार ही अधिक है।

(दी हिस्ट्री ऑफ इण्डिया ऐज टोल्ड बाइ इट्स ओन हिस्टोरियन्स्—इलियट एण्ड डाउसन, भाग ३, पृ. ६७)

हिन्दी अनुवाद किया है, पर इसमे खुसरो की 'तारीखे अलाई' नामक पुस्तक का कही जिक्र तक नही किया है।

डा० पीटर हार्डी नामक अंग्रेज विद्वान् ने, "हिस्टोरियन्स् आफ मिडिवल इडिया" नामक, एक बहुत ही अध्ययनपूर्ण पुस्तक लिखी है। इस पुस्तक मे अमीर खुसरो की उक्त 'खज़ाइन्-उल्-फुतूह' का बडा ही सूक्ष्म विवेचन किया गया है। उक्त पुस्तक का क्या विपय है, इस की वर्णन शैली कैसी है और इसमे किस प्रकार ऐतिहासिक घटनाओ का क्रम और विधान दिया गया है, इत्यादि बाते बताई गई हैं। अन्त मे, अमीर खुसरो द्वारा वर्णित या उल्लिखित ऐतिहासिक प्रसगो का मूल्याकन भी किया गया है। विद्वान् हार्डी ने इस ग्रन्थ का परिचय देने की दृष्टि से अपने वक्तव्य का आरभ निम्नलिखित शब्दों में किया है–

"खजाइन-उल-फुतूह' अमीर खुसरो द्वारा गद्य मे लिखित एक मात्र इतिहास है, जिस मे सभवत: अमीर खुसरो द्वारा इतिहास विषयक विवेचन मे कुछ सगत प्रमाण संकलित हैं क्योकि उसके द्वारा रचित अन्य पद्यमय ऐतिहासिक रचनाओ मे से कवि-कल्पित बातों की संभावना को टाला नही जा सकता। सुल्तान अलाउद्दीन खिलजी के राज्यकाल मे लिखे गये ऐतिहासिक वृत्तान्त की दृष्टि से 'खजाइन्-उल-फ़ुतूह' का अधिक मूल्य है। (उक्त पुस्तक का पृष्ठ ७६)

'खलजी कालीन भारत' नामक पुस्तक मे, पृष्ठ १५५ से १७० तक 'खजाइन्-उल्-फुतूह' के उद्धरण दिये गये है। इसके परिचय रूप, प्रारम्भ मे, इन उद्धरणो के अनुवादक, मो० सैयद अतहर अब्बास रिजवी ने प्रस्तुत ग्रन्थ का परिचय देने की दृष्टि से प्रारंभ में निम्न लिखित पंक्तिया लिखी है—

'इस (खजाइन्-उल्-फुतूह) मे अमीर खुसरो ने अलाउद्दीन खलजी की अनेक विजयो एव उसके शासन-प्रबन्ध का उल्लेख किया है। खुसरो ने इस पुस्तक में बडी आलकारिक भापा का प्रयोग किया है। यह पुस्तक अलीगढ़ सुल्तानिया हिस्टोरिकल सोसाइटी द्वारा १९२७ई० मे प्रकाशित हो चुकी है। इसका अगरेजी अनुवाद प्रोफेसर मुहम्मद हबीब ने किया है, जो तारापोरवाला, बबई द्वारा १९३१ ई० मे प्रकाशित होचुका है। इस अगरेजी अनुवाद की अशुद्धिया हाफिज महमूद शीराजी ने ओरियन्टल कालिज मैगजीन लाहोर, १९३५-३६ ई मे प्रकाशित की। हिन्दी अनुवाद १९२७ ई. की प्रकाशित पुस्तक से किया गया है किन्तु इस सस्करण मे बडी अशुद्धिया हैं, अत. हस्तलिखित प्रतियों का भी, जो कि अलीगढ विश्व-विद्यालय तथा रामपुर मे वर्तमान हैं, प्रयोग किया गया है।'

ऊपर दिये गये इन उल्लेखो के देखने से ज्ञात होता है कि अमीर खुसरो ने अलाउद्दीन के राज्यशासन के बारे में केवल एक ही इतिहास-गर्भित पुस्तक

लिखी थी, न कि, जैसा कि डॉ० कानूनगो का जोरदार कथन है कि, उसने 'दो प्रामाणिक इतिहास ग्रन्थ' लिखे थे। न मालूम मुस्लिम इतिहासो और मुस्लिम लेखकों के वर्णनों का गम्भीर अध्ययन करने वाले डॉ० कानूनगो जैसे विद्वान् ने ऐसा कथन किस आधार पर किया है ? जब तक इसका कोई विश्वस्त प्रमाण हमे ज्ञात नही होता तब तक हम तो डॉ० कानूनगो के इस मूलाधारभूत उल्लेख को सर्वथा भ्रमात्मक ही मानेगे।

★

अब हम आगे अमीर खुसरो के उस कथन पर विचार करना चाहते हैं जो उसने चित्तौड़ के युद्ध के बारे मे अपनी 'खजाइन्-उल्- फुतूह' में एक प्रत्यक्षदर्शी की हैसियत से किया है।

'खजाइन्-उल-फ़ुतूह' का ज़ो परिचय हमने सर हेनरी इलियट, डॉ० पी० हार्डी एव प्रो० रिजवी के लेखो पर से दिया है उससे स्पष्ट ज्ञात होता है कि वह मूल पुस्तक फारसी भाषा मे बहुत ही क्लिष्ट या जटिल शैली मे लिखी गई है। उसके वर्णन कृत्रिम शब्दाडंबर से भरे हुए, उपमा और अलकारो से बेहद लदे पडे हैं। फारसी भाषा के मर्मज्ञ विद्वानों को भी, उसके कथनो का ठीक-ठीक अर्थ समझने मे बड़ी भूलें होती रहती हैं। ऐसी स्थिति में उसके उल्लेखो को ऐतिहासिक दृष्टि से कितने अंश मे प्रमाणभूत माना जाय, यह एक विशेष विचारणीय प्रश्न है। यद्यपि 'खजाइन्-उल्-.फुतूह' मे अमीर खुसरो ने अलाउद्दीन की विजयो के बारे मे कुछ बातें ऐसी लिखी हैं जो वास्तविक घटना का तथ्य सूचित करती हैं, पर उसने उन ऐतिहासिक घटनाओ का क्रम-बद्ध तथा व्यवस्थित वर्णन करने की दृष्टि से इस ग्रन्थ की रचना नही की है। उसने तो अलाउद्दीन को खुश करने के लिये, उसकी विजयो का खूब बढा-चढा कर वर्णन करने वाला एक अत्यत शब्दाडबरपूर्ण तथा अतिशयोक्ति-प्रचुर एवं कृत्रिम कवि-कल्पनाओ से भरा हुआ काव्य लिखा है। जैसा कि अपने वर्ण्य नायक की स्तुति मे लिखे गये स्तुति-प्रधान काव्यो मे कवि लोग वास्तविक तथ्यो के स्वरूप को ऐसे अतिशयोक्ति पूर्ण वचनो और वर्णनो से इस तरह मँढते रहते हैं जिससे उसमे ऐतिह्य तथ्य का मूल स्वरूप खोज निकालना बड़ा कठिन हो जाता है। अमीर खुसरो का यह काव्य भी उसी कोटि का है। अतः सर् हेनरी इलियट ने इसका मूल्याकन करते हुए स्पष्ट लिखा है कि—'यह ग्रन्थ, वास्तव मे इतिहास की अपेक्षा काव्य अधिक है। सर इलियट के इस अभिप्राय को दोहराते हुए प्रो० डाउसन ने लिखा है कि* 'तारीखे अलाई' इतिहास की अपेक्षा काव्य अधिक है; परन्तु

*प्रो० डाउसन का प्राक्कथन, उपर्युक्त पुस्तक, भाग ३ पृ० १

इसके साथ अमीर खुसरो का सम्मानित नाम जुड़ा हुआ है और इसमे ऐसी विशेष विवरणात्मक बातें कही गई हैं जिनकी इतिहास के अभ्यासी उपेक्षा नही कर सकते, यद्यपि उनमें से निष्कर्ष निकालने के लिये उनको पूर्ण सावधानी के साथ परिश्रम करना पड़ेगा।'

इन विशिष्ट इतिहासविदो के कथन से स्पष्ट है कि अमीर खुसरो का प्रस्तुत ग्रन्थ इतिहास न हो कर काव्य है। इसमे इतिहास के प्रसगों का काव्य की शैली मे वर्णन है जो अतिरंजित, अतिशयोक्तिपूर्ण, शव्दाडम्बर-आच्छन्न होकर कवि-कल्पना का प्रकर्ष दिखलाने की दृष्टि से आलेखित किया गया है। ऐसी स्थिति मे डॉ कानूनगो कैसे इस ग्रन्थ को एक प्रामाणिक इतिहास मानते हैं, यह हमारी समझ में नही आता। अमीर खुसरो ने 'खजाइन्-उल्-फुतूह' में चित्तौड़-युद्ध का वर्णन किस रूप में दिया है, इसका परिचय कराने के लिए हम यहा कुछ विशेष अधिकारी विद्वानो द्वारा दिये गये अवतरणो को उद्धृत करते हैं।

इनमे सबसे प्रथम सर इलियट ने उक्त पुस्तक में जो अवतरण दिया है, वह इस प्रकार है।

[चित्तौड-विजय-वर्णन] "अल हिजरी ७०२ के ८ वें जुमादस-सानी सोमवार (२८ जनवरी, १३०३ ई० सन्) के दिन ऊची ध्वनि मे वजते नगाड़ो से चित्तौड़ को फतह करने के उद्देश्य से, दिल्ली से शाही सेना के प्रयाण की घोषणा की गई। लेखक (अमीर खुसरो) इस अभियान में साथ था। सोमवार, मुहर्रम की ग्यारहवी अल हिजरी ७०३ (२६ अगस्त, १३०३ ई० सन्) को किला ले लिया गया। राय भाग निकला, परन्तु बाद मे उसने अपने को समपर्ण कर दिया और वह तलवार की मार से वच गया। हिन्दुओ का कहना है कि जहां भी पीतल का वर्तन होता है वहां विजली गिरती है, और राय का चेहरा भय के मारे इसी प्रकार (पीतल की तरह) पीला पड़ गया था।

"तीस हजार हिन्दुओं के कत्ले-आम का आदेश देकर, उसने चित्तौड़ की सरकार अपने लड़के खिज्र खाँ को सौंप दी, और उसका नाम खिज्राबाद रख दिया। उसने उसको एक लाल रंग का सिंहासन, एक सुनहरी चोगा, हरे और काले रग के दो ध्वज देकर, लाल मणियाँ और पन्ने उस पर बरसाए। फिर, वह वापस दिल्ली लौट आया। उस ईश्वर की प्रशंसा करता हूँ कि जिसने इस्लाम के दायरे से धर्मद्रोहियो को उस पार उतार देने वाली तलवार के द्वारा हिन्द के सभी राजाओं के कत्ले-आम की आज्ञा प्रदान कर इस्लाम के दायरे से

बाहर कर दिया। यदि सुयोग से धार्मिक मतभेदो को बढ़ावा देने वाले यहाँ मौजूद होते तो शुद्ध सुन्नी ईश्वर के इस खलीफा के नाम पर कसम खा लेते कि वामपथी होने का कोई स्थान नही।"

('दी हिस्ट्री आफ इण्डिया एज टोल्ड बाइ इट्स ओन हिस्टोरियनस्'—इलियट एण्ड डाउसन, भाग ३, पृ० ७६-७७, नई आवृत्ति, किताब महल प्राइवेट लिमिटेड, इलाहाबाद।)

'खजाइन्-उल्- फुतूह' के इसी वर्णन का 'खलजीकालीन भारत' नामक पुस्तक मे, प्रो० रिजवी ने मूल फारसी से जो हिन्दी मे अनुवाद दिया है, उसमे और सर इलियट के अवतरण मे कुछ भेद मालूम देता है। प्रो० रिजवी का यह अवतरण इस प्रकार है—

"**चित्तौड़ की विजय**—सोमवार ८ जमादी उस्सानी ७०२ हिजरी (२८ जनवरी १३०३ ई०) को, सुल्तान ने चित्तौड की विजय का दृढ सकल्प कर लिया। देहली से झण्डे के चाद चल पडे। शाही काला चत्र बादलो तक पहुंच रहा था। सुल्तान सेना लेकर चित्तौड पर पहुच गया। सेना के दोनो बाजुओ के लिए यह आदेश हुआ कि वे किले के दोनों ओर अपने शिविर लगा दें। शाही सेना दो मास तक आक्रमण करती रही किन्तु विजय प्राप्त न हो सकी। चत्रवारी (चित्तौडी) नामक पहाड़ी पर सुल्तान अपना श्वेत चत्र सूर्य के समान लगाता और सेना का प्रबध करता था। वह पूर्वी पहलवानो को पश्चिमी पहलवानों से लडाता रहा। सोमवार ११ मुहर्रम ७०३ हिजरी (२५ अगस्त १३०३ ई०) को सुल्तान उस किले मे, जहा चिड़ियां भी प्रविष्ट नही हो सकती थी, दाखिल होगया। उसका दास अमीर खुसरो भी उसके साथ था। राय सुल्तान की सेवा मे क्षमा याचना के लिए उपस्थित हो गया। उसने राय को कोई हानि नही पहुचाई किन्तु उसके क्रोध द्वारा ३० हजार हिंदुओ की हत्या हो गई। जब शाही क्रोध ने समस्त मुकद्दमो का विनाश कर दिया और उस भूमि से दुरंगी का अन्त कर दिया तो उसने कृषि करने वाली प्रजा को, जिनमे कोई भी काटा नही होता, प्रसन्न कर दिया। चित्तौड का नाम खिज्राबाद रक्खा गया। खिज्र खां के सिर पर लाल चत्र रक्खा गया। उसने ऐसे वस्त्र धारण किये जिनमे जवाहरात जडे हुए थे। दो झण्डे जो, काले तथा हरे रग के थे, लगाए गए। उसका दरबार दो रग के दूरबाशो से सजाया गया। इस प्रकार वह खिज्र खां को सम्मानित करने के उपरान्त सीरी की ओर रवाना हो गया। २० मुहर्रम के पश्चात् शाही झण्डो को देहली की ओर प्रस्थान करने का आदेश दिया गया।" (खलजी कालीन भारत, पृ० ६४-६५)

सर इलियट और प्रो० रिजवी के ये अवतरण अमीर खुसरो के कथन का सार बतलाने वाले हैं। उसकी आलंकारिक शैली और भाषा का आभास इनमे नही मिलता। प्रसिद्ध मुस्लिम इतिहासविद् विद्वान् प्रो० हबीब ने, 'खजाइन्-उल्-फतूह' का, शब्दश: अंग्रेजी भाषान्तर किया है जो मद्रास से प्रसिद्ध होने वाले 'जर्नल ऑफ दी इण्डियन हिस्ट्री' नामक पत्र के सन् १६२६ वाले भाग में छपा है। खुसरो के मूल शब्द और भाव का इस अनुवाद से अच्छा परिचय मिलता है। चित्तौड के युद्ध के विषय में उसने कैसी भाषा और कैसे भाव व्यक्त किये हैं इसका कुछ वास्तविक ज्ञान प्रो० हबीब के भाषान्तर से प्राप्त होने जैसा है, अत. हम यहां पर उसको भी (हिन्दी रूपान्तर के रूप मे) उद्धृत कर देना चाहते हैं। प्रो० हबीब का विवरण इस प्रकार है–

''यह चित्तौड़ की विजय का वृत्तात है, जो पृथ्वी पर आकाश की तरह छाया हुआ है।

'८ जमादि उस् सानी, हिजरी सन् ७०२, सोमवार के दिन विश्वविजयी (अलाउद्दीन) ने चित्तौड़ जीतने का निश्चय किया। उसने उच्च ध्वनि करने वाले नगाडे बजाए जाने का आदेश दिया। अर्द्ध-चंद्रांकित शाही झण्डा दिल्ली से आगे बढ़ा और शाही छत्र धुंधले बादलो तक ऊँचा उठाया गया। नगाड़ों की आवाज ने आकाश के गुम्बज तक पहुँच कर बादशाह के दृढ़ निश्चय का शुभ समाचार फैलाया। आखिर मे, चित्तौड़ की सीमा पर जा पहुँचे। शाही खेमा, बादलो को जिसका अस्तर माना जा सकता है, उस सीमा की दो नदियों के बीच लगाया गया।* सेना के उत्साह ने दरिया के दोनो किनारों को भूचाल की तरह झकझोर डाला और सैनिकों के कदमो से उठी हुई धूल ने दोनो नदियों को पैदल पार कर लेने योग्य बना दिया। सेना के दोनो पक्षो को अपने-अपने तम्बू एक के बाद एक करके किले के दोनो तरफ तानने का आदेश हुआ। ऐसा लगता था कि जल भरे बादल पर्वत की तलहटी में उतर आए हैं। दो महीनो तक तलवारो की बाढ पहाड़ की कमर तक चढी, पर आगे न बढ़ सकी। किला बड़ा आलीशान था, जिससे ओलों की आंधी तक नही टकरा सकती थी। क्योंकि यदि बाढ़ स्वयं चोटी से तेज् बह निकले, तो भी पर्वत की तलहटी तक पहुँचने में उसे पूरा दिन लगेगा।

'इसके बावजूद कि यह अलौकिक दुर्ग जिसका मस्तक आसमान से भी ऊपर उठा हुआ था, मगरबियों के पत्थरो की मार से धरती पर झुक ही जाता, परंतु

---

*गंभीरी और बेड़च।

ईसा मसीह ने 'बैतुल मा'मूर (मक्का) से मोहम्मद के धर्म की इमारत बन जाने की खुशखबरी भेजी थी, जिसके फल-स्वरूप इमारत के पत्थर वैसे के वैसे ही बने रहे और अपना भेद अपने में छिपाए रहे[1]। छतर-वारी (चित्तौडी) नामक एक पर्वत पर बादशाह ने अपना सफेद रग का छत्र, प्रतिदिन दिखाई देने वाले सूर्य की भाँति स्थापित किया, और जैसा कि बादशाहों का रिवाज है, अपनी फौज के प्रशासन की देखभाल करता रहा। उसने पूर्वीय पहलवानो को पाश्चात्यो (मग़रबियों) से भिडने को ललकारा। अन्य योद्धा मगरबियों के पल्लो पर भारी पत्थर रखने लगे क्योकि मगरबियो की ताकत का पता लगाने के लिये उनके पल्लो के सिवा और कोई चीज नही होती। प्रत्येक योद्धा अपनी शक्ति से पत्थर उठाते समय अपने हाथ को एक खम्भा सा बना लेता था क्योकि पर्वत पर खम्भे नही थे। सुलेमान की सेना ने, डेविड की सेना की भाँति, किले पर वार किए जिससे उन्हे शेबा का स्मरण हो आया। ११ मुहर्रम हिजरी सन् ७०३ सोमवार के दिन इस युग का सुलेमान (अलाउद्दीन) अपने ऊँचे सिंहासन पर बैठ कर उस किले मे दाखिल हुआ जिसकी बुलन्दी तक परिन्दे भी उडान नही भर सकते थे। खाकसार (अमीर खुसरो), जो इस सुलेमान (अलाउद्दीन) का पक्षी है, उसके साथ था। वे बार-बार "हुदहुद ! हुदहुद !" चिल्ला रहे थे; किन्तु, मैं (अमीर खुसरो) हाजिर नही हुआ, क्योकि मुझे भय था कि शायद सुल्तान गुस्से मे पूछ बैठे "क्या बात है, हुदहुद क्यो नही दिखाई पडा ? क्या वह भी अनुपस्थितो में है ?" और यदि वह मेरी अनुपस्थिति की 'ठीक कैफियत मांगे,' तो मैं क्या बहाना बनाऊगा ? यदि गुस्से मे आकर बादशाह कह दे कि "मैं तुझे दण्ड दूगा," तो वेचारा यह पक्षी उसको सहन करने का कैसे हौसला कर सकेगा ?[2] जब

---

१ अर्थात् यद्यपि हाथ मे ली हुई आक्रामक तलवार कारगर न हो सकी, फिर भी अपने 'मग़रबियों' द्वारा दुर्ग को गिरा देना अलाउद्दीन की शक्ति मे था। परन्तु, उसने यह आध्यात्मिक सूचना प्राप्त होने पर कि आगे चल कर यह इमारत मुस्लिम हो जावेगी, कोई कदम नही उठाया। इस कारण उसको तहस-नहस करना बहुत विवेकहीन बात होती। फिर, यह बात भी थी कि दुर्ग के पत्थर हर निर्जीव पदार्थ की भाँति सच्चे मुसलमान होने के नाते समस्त मुसलमानों की तरह आपस मे सगठित थे। वे भविष्य को जानते थे, परन्तु इस बात को अपने ही तक इसलिए सीमित रक्खे थे कि कहीं रुष्ट होकर राजपूत अपने विश्वासघाती दुर्ग को गिरा न दें।

२ कुरान की प्रसिद्ध कथा की ओर सकेत किया गया है (अध्याय २७, खण्ड २)। 'हुदहुद' एक पक्षी था, जो सोलोमन के पास शेबा की रानी बालकीस (Balquis) का समाचार लाता था। सोलोमन की शेबा की इस उपमा से प्रसिद्ध पद्मिनी का ही स्पष्ट सकेत मिलता है।

धरती और समन्दर के बादशाह का सफेद बादल (के समान नेगा) इरा ऊंचे पहाड की चोटी पर दिखाई दिया, तब बरसात का मौसम था। सुल्तान के क्रोध की बिजली से आहत होकर राय के हाथ-पाव भुलस गए और पत्थर के द्वार से वह इस तरह उछल कर निकला जैसे पत्थर से आग निकलती है। बरसते पानी में ही कूद कर वह शाही शामियाने की तरफ दौटा। इस तरह उसने तलवार की बिजली गिरने से अपने को बचा लिया। हिन्दू कहते हैं कि बिजली पीतल के बर्तन पर अवश्य गिरती है और राय का मुंह भय के मारे पीतल-सा पीला पड गया था। यह निश्चित है कि वह तलवार और बाणों की बिजली से सुरक्षित न रह पाता यदि वह शाही शामियाने के द्वार तक न पहुचता।

'हरी तलवारो के भय से पीला चेहरा लिए राय ने लाल छत्र की शरण ग्रहण की उस समय भी वह महान् बादशाह (जिसकी खुशहाली सदा बनी रहे) गुस्से से लाल हो रहा था। परन्तु, जब उसने शाकाहारी (घास खाने वाले) राय को शाही खेमे के अन्दर रौंदी गई और मुरझाई हुई घास की तरह कांपते देखा तो यद्यपि राय एक बागी था फिर भी शाही मेहरबानी की ठण्डी हवा ने उस पर हवा का असर नही होने दिया। बादशाह के गुस्से का सारा गुबार अन्य बागियो पर निकला। उसने आदेश दिया कि जहां कही भी कोई हरा (जिन्दा) हिन्दू पाया जाय उसे सूखी घास की तरह काट दिया जाय। इस कठोर आदेश के फलस्वरूप तीस हजार हिन्दुओ का एक ही दिन मे कत्ले-आम कर दिया गया। ऐसा लगता था कि खिज्राबाद के चरागाहो में घास के बजाय आदमी उग आये थे। शाही गुस्से की हवा ने जब समस्त मुक्कदमों[1] को उखाड़ फेंका, तो उसने उस भूमि को दो रगो से मुक्त कर दिया, रैय्यत और किसानो की इमदाद की, जिनमे कोई भी कांटा उगने के लिए सिर नही उठा सकता था। इस आसमानी भवन की जडे और शाखाएँ विशाल साम्राज्य के विशाल वृक्ष खिज्र खां के हवाले कर दी गई और उसका नाम खिज्राबाद रक्खा गया। लाल छत्र खिज्र खां के सिर पर लगाया गया जो नीले आकाश पर लाल जन्नत-सा मालूम हुआ। उसने बाइज्जत खिलअत पहनी जो जवाहिरात से इस तरह सजी हुई थी जैसे आकाश सितारों से जड़ा हुआ हो। काले और हरे रंग के दो ध्वज उसके पास ही इतने ऊँचे लगाए गए कि शनि और सूर्य दोनो ही ग्रह उदास और शर्मिन्दा हो गए। इसके अलावा, उसके दरबार को दो रंग के दूरबाश से सजाया गया जिसमे प्रत्येक बत्ती सूर्य की जिह्वा सी मालूम दे रही थी। इस

---

१. गांव के मुखिया, जो राजपूतो मे सैनिक अधिकारी भी होते थे।

प्रकार मणियो, हीरो और लालो को बरसा कर बादशाह ने अपने लड़के की हस्ती को खुशहाल और बाइज्जत बनाया। तत्पश्चात्, खिज्रखाँ और खिज्राबाद के मामलो से मुक्त होकर उसने अपनी विजयी बागडोर को सम्हाल कर खिज्राबाद के हरे-भरे चरागाहो से सीरी की तरफ रकाब बढाई। मुहर्रम[1] की दसवी तारीख के बाद पैगबर के उस उत्तराधिकारी के ध्वज को (जो ऊँचा और ऊँचा उठता रहे); जो हिन्दुओ के सर पर चमत्कारपूर्ण ढग से हावी था, इस्लाम के नगर दिल्ली की तरफ बढ़ने का आदेश दिया गया। उस (बादशाह) ने उन सब हिन्दुओ को कत्ल करवा दिया, जो इस्लाम के दायरे से बाहर थे। यह उसकी कुफ्र का सफाया करने वाली तलवार (ज़ुल्फिकार) का एक ऐसा बडा काम था कि जिसकी वजह से, उस जमीन मे सिर्फ (नाममात्र को) अपने हुकूक की माग करने वाले कट्टर सुन्नी भी उस (अल्लाउद्दीन) के नाम का खुतबा पढ़ना पसंद करते।[2]

अमीर खुसरो के खज़ाइन्-उल्-फतूह-गत चित्तौड-युद्ध-विषयक जो उपर्युक्त तीन लेखको के भिन्न-भिन्न अवतरण दिये गए हैं उनका परस्पर मीलान करने पर ज्ञात होगा कि—इलियट साहब के अवतरण का विवरण सबसे अधिक सक्षिप्त है, प्रो. रिजवी का विवरण कुछ विस्तृत है; पर ये दोनो अवतरण अमीर खुसरो के कथन का सारार्थ मात्र बतलाने वाले हैं, उसके पूरे भाव को प्रकट नही करते। जब कि प्रो. हबीब का अवतरण खुसरो के शब्दो और भाव का प्रायः पूरा अनुवाद है। यद्यपि ऐतिह्य तथ्य की दृष्टि से इन तीनो अवतरणो मे कोई विशेष भेद वाली बात नजर नही आती तथापि एक उल्लेख ऐसा है जो विचारणीय मालूम देता है, और वह यह है कि युद्ध के अन्त मे चित्तौड के राजा की स्थिति क्या हुई। इस बात का सूचन करने वाला उल्लेख इलियट साहब के अवतरण मे इस प्रकार है कि—"राय भाग निकला पर बाद मे उसने अपने को समर्पण कर दिया।" प्रो रिजवी के अवतरण मे राजा के भाग निकलने का जिक्र नही है। इसमे केवल इतना ही कहा गया है कि "राय सुलतान की सेवा मे क्षमा-याचना के लिये उपस्थित हो गया।"

---

१ ईद से भी आनन्ददायक मुहर्रम की दसवीं तारीख का उल्लेख। खुसरो पहले कह चुका है कि अलाउद्दीन मुहर्रम की ग्यारहवी तारीख को चित्तौड के दुर्ग मे प्रविष्ट हुआ। यहाँ पर यह लिखा है कि सेना दिल्ली के लिए मुहर्रम की दसवी तारीख के बाद रवाना हुई। वास्तव मे, दोनो कथनो में कोई असगति नही है, मुहर्रम की दसवीं तारीख का इस प्रश मे उल्लेख मात्र करना था।

२ जर्नल ऑफ इण्डियन हिस्ट्री, जि० ८; भा० ३; पृ० ३६९-३७२.

इलियट और रिजवी दोनो के अवतरण मूल फारसी ग्रंथ से अनूदित हैं तब इस कथन मे ऐसी परस्पर विसंगति-सूचक बात का उल्लेख किस तरह हुआ है, यह हमारी समझ मे नही आता। हम स्वयं फारसी भाषा नही जानते हैं इसलिए मूल ग्रथ का अध्ययन कर उसका वास्तविक निष्कर्ष जानने मे असमर्थ हैं। इस सदिग्ध कथन के पढने से मालूम देता है कि यह उल्लेख स्पष्ट नही है और खुसरो के शब्दाडबरपूर्ण कथन का वास्तविक तात्पर्य क्या है, यह अन्वेषणीय है। 'राजा का भाग निकलना और बाद मे शरण आ जाना', तथा 'राजा का क्षमा-याचना के लिए उपस्थित हो जाना', इन दो विभिन्न स्थितियो के सूचक कथनो मे तो उस सारी घटना का बड़ा रहस्य छिपा होना संभवित हो सकता है। पद्मिनी-कथा-विषयक पूरे वृत्तान्त की अनुल्लिखित घटना का रहस्यमय सकेत इस अस्पष्ट और गोलमाल कथन वाले खुसरो के शब्दजाल की तह मे दबा हुआ हो सकता है। इस विषय मे हम कुछ आगे विचार करेंगे।

प्रो० हबीब के अवतरण से इस सन्दिग्ध और अस्पष्ट कथन का तात्पर्य ऐसा निकलता है कि—सुलतान का किले मे प्रवेश हो जाने वाली स्थिति को देख कर राय क्रोध के मारे एडी से चोटी तक जल गया और अपने किले से आग के तनखे की तरह बाहर निकल आया। बरसते पानी मे सटपटाता हुआ सुलतान के डेरे तक पहुंच गया, जहां वह उस (सुलतान) की तलवार से कत्ल होने से बच गया। प्रो हबीब के इस भावार्थ मे राय का भाग निकलना अथवा क्षमा याचना के लिए सुलतान की शरण में उपस्थित हो जाने वाले भाव का कोई स्पष्ट सकेत नही मिलता। इस भावार्थ से तो केवल इतना ही तथ्य प्रतीत होता है कि अलाउद्दीन के किला कब्ज़े कर लेने की स्थिति मे पहुंच जाने पर, राजा किला छोड कर बाहर निकल आया और मारकाट करता हुआ सुलतान के खेमें तक पहुंच गया, जहां वह पकड़ लिया गया, परन्तु मारा नहीं गया। इस रहस्यभरी बात का सकेत अन्यान्य उल्लेखों से प्राप्त हो रहा है, जो आगे यथा-स्थान सूचित किये जायेंगे।

अमीर खुसरो के शब्दजाल का जो भाव प्रो. हबीब ने अपने शब्दो में उतारा है उसी भाव को डॉ०पीटर हार्डी ने अपने शब्दो में इस प्रकार अवतारित किया है—

"मुख्तलिफ[1] रगो का जिक्र ! जिस रोज़ सब्ज तलवारों के खौफ से पीले

---

१. अमीर खुसरो अपने शब्दाडबर का प्रदर्शन करने की दृष्टि से, इस वर्णन मे, भिन्न-भिन्न रग वाले शब्दों का येन केन प्रकारेण प्रयोग करना चाहता है न कि इतिहास के लक्ष्य का प्रतिपादन करना।

चेहरे वाले रायो* ने उस फतहयाब सुर्ख दरबार में पनाह ली तो सजारे-हुकूमत (वह हमेशा कामयाबी के तख्त पर नशीन रहे और उसकी बहादुरी की शोहरत हमेशा सर-सब्ज रहे) उस वक्त भी गुस्से की सुर्खी से तमतमा रहा था। जब उसने हरी घास खाने वाले रायो को पैरों से कुचली हुई और मुरझाई हुई घास के तिनको की तरह शाही खेमें मे डर से कांपते हुए देखा तो, हालाँकि राय बाग़ी था फिर भी, उसके शाही अंदाज की चाँदी (श्वेतता) ने उस पर कोई आच न आने दी। उसके गुस्से की, जला देने वाली हवा ने दूसरे बागियो का रुख पकडा और उसने हुक्म दिया कि जहाँ भी कोई काला हिन्दू पाया जाय उसको सूखी घास की तरह काट दिया जाय।" (हिस्टोरियन्स ऑफ मेडिवल इण्डिया; पी० हार्डी, पृ० ८०.)

अमीर खुसरो के कथन को सुलतान द्वारा किये गये चित्तौड़ युद्ध के बारे में जो मुख्य आधार माना जा रहा है वह कितना सन्दिग्ध और अस्पष्ट है, यह इन अवतरणो से अच्छी तरह ज्ञात हो रहा है। खुसरो बादशाह की फतह की बाँग पुकारता हुआ, चित्तौड़ के किले को सुलतान के बेटे खिज्रखा को दे देना और उस का बडा सम्मान करना आदि बातें तो बहुत लच्छेदार शब्दो में आलेखित करता है, पर उस राय का, जो बादशाहा की शरण मे आ गया था, फिर क्या हुआ, इस बारे में वह एक शब्द भी नही कहता है।

जियाउद्दीन बर्नी चित्तौड के युद्ध के बारे मे खुसरो की तरह कोई खास वर्णन नही लिखता। वह केवल एक जगह इतना ही लिखता है कि—"सुल्तान अलाउद्दीन ने पुनः शहर देहली से सेना लेकर चित्तौड पर चढाई की, चित्तौड को घेर लिया और शीघ्रातिशीघ्र किले पर विजय प्राप्त करके शहर लौट आया। सुल्तान के वापस आ जाने पर मुगलो के आक्रमण का भय पुनः आरभ हो गया।" (खलजी कालीन भारत—पृ० ७६)

पर इस प्रसग मे बर्नी दो बार यह कथन करता है कि चित्तौड़ के युद्ध में सुल्तान को सैनिक दृष्टि से बडी हानि पहुँची थी; यथ—

"जिस वर्ष सुल्तान अलाउद्दीन चित्तौड की विजय के उपरांत देहली लौटा

---

* डॉ० हार्डी ने इस अवतरण मे दो जगह Rais ऐसे बहुवचन का प्रयोग किया है, जो विचारणीय है। क्या खुसरो के मूल लेख मे ही राय शब्द बहुवचनान्त है या अनुवादकने ऐसे शब्द का प्रयोग किया है? यदि खुसरो ने बहुवचन का प्रयोग किया है तो उसका कुछ अर्थ है या यो ही लिख मारा है? चित्तौड़ का राय तो एक ही होना चाहिये।

उसी वर्ष उस सेना को जो कि सुल्तान के साथ वर्षा ऋतु में विजय के लिए गई थी बडी क्षति पहुँची........"

"उस वर्ष सेना पर यह दुर्घटना पड गई कि सुल्तान अलाउद्दीन क चित्तौड की विजय से लौटने के उपरांत इतना समय न मिल सका था कि देहली की सेना के घोडे तथा अस्त्र सुव्यवस्थित कर सकता। चित्तौड की सेना को बडी क्षति पहुँची थी।" (वही, पृ० ७६)

अमीर खुसरो के कथन में इस प्रकार सेना को क्षति के विषय में किंचित् भी सकेत नही है। वह तो बादशाह की विजयी सेना का दिल्ली की ओर प्रस्थान करने का वैसे ही शब्दो में उल्लेख करता है जैसे वह विजय के लिये दिल्ली से चली थी। वह तो सुलतान का भाट था, इसलिए उसकी हानि की बात कैसे उल्लिखित कर सकता था ?

अमीर खुसरो ने अपनी 'देवलरानी और खिज्रखां' वाली प्रेम कहानी मे भी संक्षेप मे चित्तौड युद्ध का वर्णन किया है, जिसमे वह चित्तौड़ के युद्ध का समय केवल दो ही महीनें बतलाता है न कि खाजइन्-उल्-फुतूह की तरह, छः महीने का। अमीर खुसरो का यह कथन इस प्रकार है—

"फिर, उस (सुलतान अलाउद्दीन) ने शाही लवाज़मे सहित चित्तौड़ पर चढाई की और एक ही धावे में उसे अपने अधीन कर लिया। वहां भी विशाल सैना सहित राय मौजूद था, जो दरअसल समस्त हिंदू राजाओं में सर्वश्रेष्ठ था; परन्तु, बादशाह को अधिक समय नष्ट न करना पड़ा; दो ही महीनो मे किले को फतह कर लिया। यह धावा इतना प्रबल था कि शनिग्रह को भी अपने उपग्रहो की सुरक्षा की चिंता हो गई। उसका नाम खिज्राबाद रक्खा गया और खिज्रखाँ को भेंट कर दिया गया। हिंदुओं का स्वर्ग (चित्तौड़) एक अद्भुत दुर्ग है और इसके चारो तरफ चश्में और चरागाह हैं"। (देवल रानी)

(प्रो० हबीब द्वारा अनूदित, 'जर्नल ऑफ इण्डियन हिस्ट्री', जिल्द ८, भा ३; पृ. ३७२)

अमीर खुसरो का यह वर्णन भी विचारणीय है। 'खजाइन्-उल्-फुतूह' वाले वर्णन मे तो उसका कथन है कि–चित्तौड पहुचने पर सुलतान की सेना दो महीनों तक नो किले की (कमर-स्वरूप) तलहटी तक भी न पहुच सकी और बाद मे बडी मुसीबतो को उठाते हुए चित्तौड़ी नाम की छोटी पहाडों पर जाकर सुलतान ने डेरा डाला और फिर वहाँ से किले को तोड़ कर वह अन्दर दाखिल हुआ। पर, इस वर्णन मे तो वह कहता है कि एक ही धावे में सुलतान ने दो ही महीनो में किला फ़तह कर लिया। ऐसे भयंकर युद्ध के बारे मे मानो दो

महीनों और छः महीनो के समय का अन्तर कोई नगण्य जैसी बात हो। एक अथवा दो ही दिन के अन्तर में ऐसे युद्धों की क्या परिणति हो सकती है, वह अमीर खुसरो के ज्ञान के बाहर की चीज तो नही होनी चाहिए, फिर उसके कथन मे वैसी मुख्य घटना सूचक हकीक़त में ऐसी विसंगति क्यो मालूम देती है? इसका निष्कर्ष तो यही निकलता है कि खुसरो के कथन को सर्वथा प्रमाणभूत मानना ऐतिहासिक तथ्यान्वेषण के सिद्धान्त की उपेक्षा करना है। पद्मिनी की कथा के अस्तित्व या अनस्तित्व का निर्धारण करने के लिए अमीर खुसरो या उसके जैसे बर्नी आदि विधर्मी इतिहास लेखको के कथनो को ही विशेष प्रमाणभूत मानने का जो डॉ० कानूनगो का तर्क है वह सर्वथा बल-हीन है।

अलाउद्दीन की स्त्री-लपटता सुप्रसिद्ध है। वह अच्छी अच्छी मुसलिम स्त्रियो को भी अपनी दुष्ट कामवासना की तृप्ति के लिये फंसाया करता था। उसके इस दुराचारमय व्यवहार की तरफ उसकी मुख्य बीबी की भी बडी तिरस्कारपूर्ण भावना थी और इसीलिये वह अपनी बडी बीबी से रुष्ट और दूर रहा करता था। इसका एक दिलचस्प वर्णन 'ज़फ़रुल वालेह बे मुजफ्फर वालेह' नामक अरबी तवारिख में दिया गया है, जिसका लेखक अब्दुल्लाह मुहम्मद बिन उमर अल-मक्की अल-आसफी, उलुगखानी है। यह वर्णन इस प्रकार है—

"अलाउद्दीन का अपने एक चचा की पुत्री से सम्बन्ध था। इस बात से उसकी धर्मपत्नी खिन्न रहती थी। वह (अलाउद्दीन) यह बात अपने चचा (जालालद्दीन) के कारण अपनी धर्मपत्नी से छिपाता था। उस लडकी का नाम महरू था। यह अलप खाँ की बहिन थी। जब उस चचा (जलालुद्दीन) की पुत्री को यह सूचना मिली तो वह बडी हैरान तथा रुष्ट हुई; किन्तु, अलाउद्दीन ने यह बात अस्वीकार की। उसकी स्त्री ने कुछ दरवान इस बात की देखरेख के लिये नियुक्त कर दिये कि वे कहा मिलते हैं। सयोग से, वे लोग एक उद्यान मे एकत्रित हुये। जब वे लोग पूर्णतया असावधान थे तो यह लडकी (अलाउद्दीन की धर्मपत्नी) उनके पास पहुँच गई, मानो वह यह छन्द पढ़ रही हो।

'निस्सदेह वह भोग-विलास सबसे उत्कृष्ट है, जो समय (अवसर) तुझे प्रदान करे और जिस समय आपत्तियां सो रही हों।'

अलाउद्दीन को यह बहुत बुरा मालूम हुआ। उसकी धर्मपत्नी ने केवल आलोचना ही नही की अपितु अपने पैर से जूता निकाल लिया और उस स्त्री को उससे मारा भी। अलाउद्दीन ने जब यह देखा तो वह सहन न कर सका।

उसके हाथ में तलवार थी। उसने वह तलवार अपनी धर्मपत्नी को मारी किन्तु घाव गहरा न लगा। तलवार के घाव से केवल कुछ रक्त वह गया। अलाउद्दीन अब बड़े सकट मे पड गया। वह बहुत घवड़ाया, कारण कि उसकी पत्नी बड़ी चतुर थी, और उसकी (पत्नी की) माता बडी दुष्टा थी, किन्तु उसका चचा (जलालुद्दीन) बड़ा ही सहनशील और उस पर वड़ी कृपादृष्टि रखता था। किन्तु अलाउद्दीन और उसकी धर्मपत्नी में यह घवड़ाहट बहुत समय तक वर्तमान रही।"—खलजी कालीन भारत; पृष्ठ २३०

अलाउद्दीन की ऐसी स्त्री-लोलुपता वाली वात का न कहीं अमीर खुसरो ने जिक्र किया है न जीयाउद्दीन वर्नी और इसामी ने किया है, जो उस सुलतान के बहुत से तथ्यो को ठीक जानने और वर्णन करने वाले वताये जाते हैं। अतिकामान्ध और क्रूर प्रकृति वाला अलाउद्दीन चित्तौड़ की राजरानी पद्मिनी जैसी अनुपम हिन्दु स्त्री का रूप-सौन्दर्य सुन कर, उसे हस्तगत करने की कामना को कैसे टाल सकता था ? इस कार्य से तो उसके दो दुष्ट उद्देश्य एक साथ सिद्ध होने जैसे थे। वह इस दुर्वासना से प्रेरित हो कर, एक तो चित्तौड़ के राजा जैसे, हिन्दु जाति के सर्वश्रेष्ठ क्षत्रिय वंश को पददलित कर देना चाहता था और दूसरा उसी श्रेष्ठ राजवंशीय राजघराने की मुख्य राजरानी जैसी अनुपम हिन्दु स्त्री का सतीत्व नष्ट कर, समस्त हिन्दु जाति के स्वधर्माभिमान का, अपनी क्रूर तलवार द्वारा शिरश्छेद कर देना चाहता था; और इस तरह वह, अमीर खुसरो के कथनानुसार, भारत के स्वर्गसमान उस पवित्र दुर्ग को उद्ध्वस्त कर, वहां पर, इस्लाम की विजय का पत्थर गाड़ना चाहता था। इसी मुराद से वह दिल्ली से वड़े जोर के नगाड़े वजाता हुआ चित्तौड़ पर चढ़ा था। इसीलिये उसका वह चापलूस भाट भी, अपनी मदभरी कविता के कटोरे पिलाता रह कर उसका जी बहलाने के लिये साथ में चला था। वड़ी ऊमंग से, चुटकी ही मे चित्तौड़ की रानी और राज्यसत्ता दोनो प्राप्त करने की लालसा से वह चित्तौड़ पहुँच गया। पर, वहां के शूर-वीर क्षत्रिय सन्तानो ने उसका वैसा सामना किया जिसकी उसको कल्पना भी न हुई थी। यह तो निश्चित ही था कि उस दानव की वैसी महान् सैनिक शक्ति के सामने चित्तौड़ के अल्पसंख्यक राजपूत कितने दिन टिक सकते थे ? इसलिये आखिर मे उन्होंने अपनी राज्यसत्ता का सपूर्ण वलिदान कर देने की दृष्टि से, वह जौहररूप महायज्ञ सपन्न किया, जिसमे राजरानी सहित राजघराने की समस्त नारियो ने अपनी आहुति दे दी तथा अवशिष्ट राजपूत वीर किले को छोड कर रणभूमि मे पहुचे और अपनी रक्तधाराओ से अपने पूर्वजो की पुण्य भूमि का तर्पण कर स्वर्ग लोक

मे चले गये। यद्यपि इस प्रकार उस सुलतान ने अपने हजारो सैनिको को मौत के घाट पहुँचा कर और उनके मुर्दो को जमीन मे दफना कर अपनी राज्यलोलुपता को तृप्ति कुछ अंशो मे कर ली, पर वह अनुपम राजरानी, जिसको बादशाह के यार कवि ने 'शेबा' की रानी 'बलकीस' की उपमा देकर उस दुष्ट प्रकृति सुलतान को चगाया था, वह प्राप्त न हो सकी। वह तो, उस दुष्ट दानव के पापी पैरो के कलुषित स्पर्श द्वारा अपने तीर्थभूत दुर्ग की पुण्य भूमि अपवित्र बने उसके पहले ही माता ज्वालामालिनी की गोद मे बैठ कर, अपनी देवाशी देह को भस्म-स्वरूप बना कर, भगवान् शिव के भूतिमय ललाट पर जा बिराजी थी। इस प्रकार उस दानव की वह दुराशा मिट्टी मे मिल गई और वह वहा से निराश होकर शीघ्र वापस अपने स्थान को चल पड़ा।

ऐसी निराशाजनक घटना का उल्लेख या आभास अमीर खुसरो के उस चापलूसी-भरे काव्य मे कैसे आ सकता है? उसके उस काव्य मे ऐसी घटना के उल्लेख के आने की सम्भावना भी कैसे की जा सकती हैं?

तथापि अमीर खुसरो ने चित्तौड-युद्ध वाले वर्णन मे, जो कुछ बात अपने विषय मे कही हैं वह अलाउद्दीन की उस समय की मानसिक निराशा का स्पष्ट आभास प्रकट करती हैं। हिन्दुओ का स्वर्ग जैसा भव्य और श्रेष्ठ किला फतह कर लेने पर तथा 'समस्त हिन्दु राजाओ मे सर्वश्रेष्ठ राजा' पर अद्भुत विजय प्राप्त कर लेने पर, उस घमण्डी सुलतान को ऐसी क्यो निराशा हो गई कि जिससे वह अपने भाट-जैसे दरबारी कवि के लिये 'हुदहुद' का नाम लेकर चिल्ला ने लगा तथा बडे-बडे लडाकू योद्धा वीरो को शाबाशी देने के बदले भाट जैसे वाचाल और चापलूस बन्दे को ही पुकारने लगा। उस समय सुलतान को यह भी भान नही था कि वह 'हुदहुद' नाम की चिडिया उस किले पर विद्यमान् भी है या नही, जो उसको शेबा की रानी के समान किसी चीज के लिये लालायित बनाये रखती थी। अमीर खुसरो को यह बडा भय उस समय क्यो पैदा हो गया था कि यदि वह उस सयम अपने सुलेमान के सामने उपस्थित होता तो न जाने वह सुलेमान, क्रोध और निराशा के मारे उस वेचारी गरीब चिडिया का क्या हाल करता।

अमीर खुसरो का यह स्वविषयक उल्लेख सबसे अधिक महत्त्व का है। इसमें चित्तौड के युद्ध का पूरा रहस्य छिपा हुआ है और वह रहस्य स्पष्ट रूप से पद्मिनी विषयक वृत्तान्त का सूचन करता है। अमीर खुसरो गर्भितरूप से कह रहा है कि बादशाह ने पद्मिनी के बारे मे जो बातें मुझ से या मेरे जैसे

अन्य किसी से सुन रखी थी और जिसकी प्राप्ति के लिये उसने चित्तौड़ पर धावा किया था तथा उसको जीतने के लिये हजारो चुनिन्दा मुसलमान सैनिको को मौत के घाट पहुचाया था वह 'शेबा' की रानी के समान पद्मिनी अलाउद्दीन के किला फतह कर उसमे प्रविष्ट होने के पूर्व ही, समस्त राजरानियो के साथ भस्म हो चुकी थी। चित्तौड के रक्षक राजपूत, जो लडते-लडते आखिर में थोड़े बहुत बचे थे, वे अपने अन्तिम नेता के साथ केसरिया करके किले के मुख्य द्वार से निकल कर दुश्मन के सामने जा डटे और मार-काट करते हुए शाही खेमे पर टूट पड़े। इसी घटना का सकेत अमीर खुसरो अपने वर्णन में स्पष्ट रूप से दे रहा है। 'राजा पत्थर के द्वार से इस तरह उछल कर निकला जैसे पत्थर से आग निकलती है', इस वाक्य का क्या अर्थ हो सकता है ? यही कि वे शूरवीर राजपूत अपने किले के दरवाजे से बड़े आवेग पूर्वक बाहर निकल आये और आग के उडते और उछलते हुए अगारो की तरह अपनी तलवारें चमकाते हुए उन दुश्मनो पर टूट पड़े। राजपूतो को जब अपनी जीत की आशा नही रहती तो वे सदैव जौहर करके अन्त में अपने दुर्ग या गढ़ को छोड कर दुश्मन का आखिरी मुकाबला करने को निकल पड़ते हैं। 'हमीर महाकाव्य' में इस आखिरी मुकावले का बहुत रोमहर्षक वर्णन दिया गया है। जालोर के चाहमान वीर कान्हडदेव के चरित्र वर्णन रूप 'कान्हड़देव प्रबन्ध' में भी ऐसा ही अद्भुत शौर्य-प्रदर्शक वर्णन मिलता है। इसलिये अमीर खुसरो का उक्त वर्णन, उस युद्ध की अन्तिम घटना का आभास दे रहा है। राजा बादशाह की शरण में आ गया इसलिये वह नही मारा गया और बाकी के सब राजपूत वीरों को कत्ल कर दिया गया इस बात का मर्म तो कुछ और ही है, जिसका जिक्र हम आगे करना चाहते हैं। प्रस्तुत मे तो अमीर खुसरो के स्वगत उल्लेख का रहस्योद्घाटन करना ही अपेक्षित है।

पद्मिनी-विषयक कुछ बातें अमीर खुसरो ने अलाउद्दीन से कह रखी थी इसलिये वह खुसरो अपनी तुलना सुलेमान के उस 'हुदहुद' पक्षी के साथ कर रहा है जो शेबा की रानी बलकीस के विषय मे सुलेमान को खबरें दिये करता था। इसीलिये अलाउद्दीन को जब बलकीस के जैसी रानी पद्मिनी, उस चित्तौड दुर्ग मे न मिली तब वह अत्यन्त निराश और क्रुद्ध हुआ और उस क्रोध और निराशा से भरे शब्दो मे उस 'हुदहुद' पक्षी को चिल्ला कर पुकारने लगा। पर मौत के भय से वह 'हुदहुद' (खुसरो) उस समय वहां से कही सटक गया था। क्यो कि वह समझता था कि अलाउद्दीन पद्मिनी के बारे मे उससे पूरी कैफियत मांगता और वह क्यो नही हाथ आई इसके बारे में भी सारी जानकारी

चाहता। पर इसका कोई जबाब खुसरो के पास नही था; सिवा इसके कि वह तो जल मरी है, वह और क्या बताता और इसको सुनकर न जाने बादशाह उस समय उस पर कैसी बिताता ? इसलिए उसने वहा से रफू हो जाना ही अपनी जान बचाने का उपाय समझा।

अमीर खुसरो के उक्त कथन का इसके सिवा और कोई अर्थ घट नही सकता, और ना ही सुलेमान और शेबा की रानी बालकोस के साथ 'हुदहुद' पक्षी की उपमा का जिक्र इस सदर्भ मे अन्य रूप से सार्थक हो सकता है।

प्रो० हबीब ने, जो इस्लामी साहित्य और इतिहास के मर्मज्ञ विद्वान् हैं और जिन्होंने अमीर खुसरो के 'खजाइन्-उल्-फुतूह' का उपर्युक्त उल्लेखानुसार प्रामाणिक अग्रेजी अनुवाद किया है, इस उल्लेख पर जो टिप्पणी दी है (ऊपर पृ० ५५) उसमें इस बात का स्पष्ट निर्णय दिया है। डॉ० कानूनगो प्रो० हबीब के इस निर्णय से सहमत नही हैं। वे इस उल्लेख में पद्मिनी का कोई सकेत रहा हुआ है, ऐसा नही समझते। उन्होने इस उल्लेख के बारे मे अपनी उक्त 'स्टडीज़ इन् राजपूत हिस्ट्री' नामक पुस्तिका मे कुछ स्पष्टीकरण करने का प्रयत्न किया है पर हमारे विचार से उसमे कोई तथ्य नही है। वह उनका तर्क वैसा ही असगत है जैसे उनके अन्यान्य कई तर्क हैं। इनमे से कुछ का उल्लेख और स्पष्टीकरण हम क्रम से आगे करना चाहते हैं। उपर्युक्त वर्णन से यह स्पष्ट हो जाता है कि यद्यपि अमीर खुसरो ने पद्मिनी के नाम का स्पष्ट उल्लेख नही किया और न ही उसके विषय की किसी विशेष बात का जिक्र किया है, पर उसने चित्तौड-युद्ध के वर्णन मे जो अपने विषय का गर्भित उल्लेख किया है उससे स्पष्ट इस घटना का सकेत मिल रहा है, इसमें कोई सन्देह नही है; अन्यथा इस उल्लेख की वहां पर कोई सगति नही मालूम देती।

रत्नसिंह विषयक उल्लेखों का अवलोकन और स्पष्टीकरण—

डॉ० कानूनगो ने उक्त प्रकार से पद्मिनी की सत्ता को असिद्ध करने के लिए जो कुछ असंगत तर्क उपस्थित किये हैं उनमे एक मुख्य तर्क यह भी है कि जिस तरह चित्तौड के पुराने ऐतिहासिक वर्णनो मे पद्मिनी का उल्लेख नही मिलता उसी तरह उसके पति राजा रत्नसेन का भी ठीक उल्लेख नहीं मिलता, अतः राजा रत्नसेन और रानी पद्मावती दोनो ही कल्पित पात्र हैं।

पद्मिनी के विषय मे तो हमने ऊपर जो कुछ लिखा है वह पर्याप्त प्रमाण-भूत माना जाना चाहिये। रत्नसिंह की सत्ता के विषय मे हम यहां पर उन

पुराने अस्त-व्यस्त उल्लेखो की परस्पर संगति पर अपने विचार प्रस्तुत करना चाहते हैं और साथ मे कुछ ऐसे भी प्रमाण उपस्थित करना चाहते हैं जो हमे उदयपुर के ऐतिहासिक साधनो द्वारा प्राप्त हो रहे हैं ।

स्वर्गीय म. म. गौरीशकर हीराचन्द जी ओझा ने, अपने सर्वाधिक प्रमाणभूत और प्रतिष्ठित ग्रन्थ 'राजपूताने के इतिहास' मे, अलाउद्दीन के आक्रमण के समय चित्तौड का स्वामी रावल रत्नसिंह था, यह तो उसी के राज्य काल के वि सं. १३५९ में उत्कीर्ण शिलालेख के प्रत्यक्ष प्रमाण से सिद्ध कर दिया हैं । ओझाजी ने इस लेख के विषय मे लिखा है कि 'महारावल रत्न-सिंह के समय का अब तक एक ही शिलालेख मिला है, जो वि. स. १३५९ माघ सुदि ५ बुधवार का है। यह लेख दरीवे की खान के पास वाले माता (मातृकाओ) के मन्दिर के एक स्तम्भ पर खुदा है।' (ओझाजी का 'राजपूताने का इतिहास', भाग १, पृ० ४९५)

ओझाजी ने अपने उक्त उल्लेख के नीचे पाद टिप्पणी मे उल्लिखित शिला-लेख का पाठ भी दिया है जो निम्न प्रकार है—

"स० १३५९ वर्षे माघ सुदि ५ बुध दिने अद्येह श्री मेदपाट मंडले समस्त राजावलि समलकृत महाराजकुल श्री रतनसिंह देव कल्याण विजय राज्ये तन्नियुक्त मह० श्री महणसीह समस्त मुद्राव्यापारान् परिपथयति ....

(दरीबे का लेख-अप्रकाशित)

"इस लेख की छाप मुझे ता० १९-८-२६ को राणावत महेन्द्रसिंह द्वारा उदयपुर मे प्राप्त हुई।" (वही पुस्तक, पृ० ४९५–९६)

जैसा कि लेख की पक्तियो से स्पष्ट होता है, यह लेख अपूर्ण है। किम निमित्त यह लेख खोदा गया था, इसका वर्णन लेख के त्रुटित अश मे चला गया है। इस लेख के उत्कीर्ण करने का समय वि० सं० १३५९ की माघ सुदि ५ बुधवार है। उस समय मेदपाट मंडल अर्थात् मेवाड़ प्रदेश में समस्त राजगुणों से समलंकृत महाराजकुल अर्थात् महारावल श्री रतनसिंह देव का कल्याणकारी राज्य प्रवर्त्तमान था औ उनका समस्त राज्य-कार्य-भार वहन करने वाला अर्थात् मुख्य प्रधान महं (महत्तम—महेता) महणसीह था ।

इस लेख को पढ़कर इतिहास के अल्प से अल्प अभ्यासी जन को भी इसमें सन्देह नहीं रह सकता कि स. १३५९ के माघ महीने की सुदि ५ बुधवार के दिन

मेवाड़ मे महारावल रतनसिंह राज्य कर रहा था। अलाउद्दीन के इतिहास-लेखक अमीर खुसरो की दी हुई मिति यदि ठीक हो तो उससे जाना जाता है कि इसी माघ महीने की सुदि ६ को, अर्थात् जिस दिन दरीबे का उक्त लेख लिखा गया उसके ठीक ४ दिन बाद ही, अलाउद्दीन ने चित्तोड पर चढाई करने के लिए दिल्ली से प्रयाण किया था। चित्तौड़ पहुचने में उसको कितना समय लगा यह उस इतिहास मे नही बताया गया है। अमीर खुसरो ने केवल इतना ही लिखा है कि—चित्तौड पहुच कर सुलतान ने उस प्रदेश मे बहने वाली दो नदियो के बीच वाले भाग मे अपनी सेना के खेमे गाढने का आदेश दिया। फिर, किले को सर करने की कारवाई शुरू हुई परन्तु दो महीनो तक यह कार-वाई चलती रहने पर भी शाही सेना किले की कमर तक भी नही पहुच पाई। तब बादशाह ने मोर्चा बदला और चित्तौडी नामक (छोटी) पहाडी के ऊपर जा कर अपना खेमा गडवाया और वहा से मगरबियो और पाशिबो के साधनो द्वारा किले की दीवारें तुडवाकर किले को फतह किया, इत्यादि। इस प्रकार ७ महीनो अर्थात् भाद्रपद सुदी ६ प्रतिपदा के दिन सुल-तान ने किले में प्रवेश किया। ईस्वी सन् के मुताबिक ये दिन इस प्रकार होते हैं- २८ जनवरी, १३०३ ई० को अलाउद्दीन ने दिल्ली से चित्तौड की ओर प्रयाण किया, २६ अगस्त, १३०३ ई० को चित्तौड का किला फतह किया।

अलाउद्दीन के इतिहास-लेखक खुसरो और बर्नी आदि ने वहा के राजा का नाम नही लिखा, पर उपर्युक्त शिलालेख के प्रत्यक्ष प्रमाण से सिद्ध है कि वह महारावल रत्नसिंह ही था और वही पद्मिनी की कथाओ मे वर्णित उसका पति राजा रतनसेन है।

पर, यह रत्नसिंह अथवा रतनसेन कौन था, किसका पुत्र था और कब चित्तौड की गद्दी पर बैठा, यह एक प्रश्न इतिहासकारो के लिये समस्या-रूप बना हुआ है और इसी समस्या के कारण रत्नसिंह और रानी पद्मिनी की सत्ता का प्रश्न विशेष उलझन मे पड़ गया है।

जैसा कि हमने ऊपर सूचित किया है, अलाउद्दीन के भयंकर आक्रमण के कारण, कुछ समय के लिए चित्तौड की राज्यसत्ता विलुप्त-सी हो गई थी। उस युद्ध मे चित्तौड़ राज्य के प्रायः समस्त राजपूत योद्धा और सामतगण मारे गये थे। राजवश एक प्रकार से विच्छिन्न हो गया था। राज्य का समस्त वैभव लुट गया था। चित्तौड राज्य की समस्त सपत्ति किले पर ही सचित थी। युद्ध के प्रसग में जब किला मेवाड के रक्षको के हाथो से सर्वथा छिन जाने की

स्थिति मे आ गया तब प्रथम तो राज्य के कर्ता-धर्ताओ ने स्वय अपनी धन-जनादि उस समस्त सपत्ति को अपने ही हाथो नष्ट कर दिया था; और जो कुछ बच गई थी उसे मुसलमानों ने नष्ट कर दिया। प्राय: १०-१५ वर्ष तक मुसलमानो का उस किले पर अधिकार रहा। मेवाड़ के थोडे - बहुत राजपूत जो इधर-उधर बच गये थे वे चित्तौड़ से दूर-दूर के पहाडों मे चले गये थे। मुसलमान अत्याचारियो ने किले पर और नीचे की तलहटी मे बने हुए राजभवनों और देवमन्दिरो को बुरी तरह नष्ट-भ्रष्ट कर दिया था। ऐसी स्थिति मे चित्तौड़ के राजवश से संबन्धित एव अन्यान्य स्थानीय ऐतिहासिक साधनों का बहुत अंश में विलोप हो जाना अनिवार्य था।

चित्तौड़ के इस प्रकार के सर्वनाश के कोई २०-२५ वर्ष बाद राणा हमीर ने अपने प्रबल बाहु-पराक्रम द्वारा चित्तौड़ को पुन: हस्तगत किया और वहा पर अपने पैतृक राजसिहासन की पुन प्रतिष्ठा की। हमीर को चित्तौड का विनष्ट राज-पाट सर्वथा खाली मिला था। उस समय वहां पर चित्तौड़ की भूतकालीन समृद्धि का कोई भी अवशेष बाकी नही था। भस्मीभूत बने हुए खण्डहरो पर उसने अपने नये राजभवनो और अन्यान्य स्थानो का पुनरुद्धार कार्य शुरू किया था। वर्षों के सकटो से त्रस्त लोगो को अपने पूर्वजों की स्मृति तक क्षीण हो गई थी। उस युद्ध मे कौन वीर, कौन सामत, कब मारा गया, कब पकडा गया और कब कहां चला गया—इसका भी अनेको को कुछ पता नही रहा। महाराणा हमीर के निज के परिवार के पिता, चाचा, बाबा, दादा आदि अनेक समर्थ, शूरवीर और पराक्रमी नर भी उस युद्ध मे मर चुके थे और जो कोई बच रहे थे वे इधर-उधर जा वसे थे। हमीर के चित्तौड मे आकर बैठने के बाद धीरे-धीरे सब फिर व्यवस्थित होने लगा।

मालूम देता है, महारावल रत्नसिह की कोई औरस सन्तान विद्यमान नही थी। हमीर रत्नसिह के एक भतीजे अरसी का पुत्र था। वही उस वश में उस समय एकमात्र होनहार बालक के रूप मे विद्यमान था। रत्नसिह की मृत्यु के बाद, उस वश के अवशिष्ट राजपूतो ने उसे चित्तौड की राजगद्दी का स्वामी नियुक्त कर उसको राजतिलक कर दिया और उसकी रक्षा के निमित्त उसे सीसोदे आदि के प्रदेश मे भेज दिया। वहा वह अपना बालपन बिताता रहा और साथ ही अपनी शक्ति बढाता रहा। अवसर पाकर वह चित्तौड़ का किला हस्तगत करने में सफल हुआ और उक्त प्रकार से उसने विध्वस्त चित्तौड़-राज्य का पुनर्निर्माण-कार्य शुरू किया।

(१) रावल रत्नसिह महारावल समरसिह की मृत्यु के बाद मेवाड़-राज्य

का स्वामी बना था, पर वह समरसिंह का औरस पुत्र नही था । वह सीसोदे की लघु शाखा वाले गढ-मडलीक विरुदधारक भड लक्ष्मसिंह का छोटा भाई था ।

(२) भड लक्ष्मसिंह के पिता का नाम जयसिंह (जेसिंग) था, जो भीमसिंह (भीमसी-भीमसेन) का पुत्र था ।

(३) भड लक्ष्मसिंह आदि कुल मिलाकर १३-१४ भाई थे, जो प्राय सबके सब उस चित्तौड़ को लड़ाई मे काम आये ।

(४) भड लक्ष्मसिंह के अरसी, अजैसी, अनतसी आदि कई पुत्र थे जिनमे से ७ पुत्र भी उस लडाई मे उसके साथ मारे गये थे ।

भाटों और बड़वो आदि की बहियो मे इन नामों को भ्रम से कुछ आगे-पीछे लिख देने के कारण लक्ष्मसिंह की वशावली मे कुछ गडबड हो गई और उसके कारण रत्नसिंह के वास्तविक क्रम का निर्देश भी भ्रमात्मक बन गया ।

रत्नसिंह प्रथम तो उस युद्ध मे, प्रारभ ही मे बादशाह द्वारा किये गये छल के कारण से गफलत मे पकडा गया, पर गोरा बादल जैसे वीरों की चतुराई और रणकौशल के कारण वह छुडा लिया गया था । उस समय शायद भड लक्ष्मसिंह वहां मौजूद नही था । वह शायद मालवे मे मुसलमानो की सेना के साथ उलझा हुआ था । चित्तौड पर अलाउद्दीन ने स्वय आक्रमण किया है और उसके छलभेद द्वारा उसका छोटा भाई राजा रत्नसिंह पकडा गया है तथा दुष्ट अलाउद्दीन रानी पद्मिनी को लेना चाहता है, यह सुनकर वह चित्तौड की रक्षा के लिए वहा पहुँच गया । चित्तौड के राजपूतो ने बडी चतुराई के साथ अलाउद्दीन को धोखे में डाल कर तथा उसे पूरा बेवकूफ बनाकर, उसके पजे मे से राजा रत्नसेन को छुडा लिया, इससे उस सुलतान के क्रोध की ज्वाला भयकर रूप से भभक उठी । फिर, उसने अपनी सर्व शक्ति लगा कर चित्तौड का नाश करना निश्चित कर लिया और दिल्ली से बहुत बडी सेना लेकर वह वहा पर डट गया । इस पुनराक्रमण के समय लक्ष्मसिंह के नेतृत्व मे वह भयकर युद्ध शुरू हुआ । उस समय रत्नसिंह या तो अस्वस्थ रहा हो या राज्यभार वहन करने में अशक्त बन गया हो, इससे लक्ष्मसिंह ने अपने अन्य एक भाई को राजतिलक कर उसके झडे के नीचे अपने राजपूतों को लडाई के मैदान में भेजना चालू रखा । युद्ध के मैदान में जब वह नया राजा मारा गया तो उसके स्थान पर लक्ष्मसिंह ने फिर अपने अन्य एक और भाई को राजचिह्न धारण करा कर उसे युद्ध-क्षेत्र मे भेज दिया । इस तरह उसने एक के बाद एक अपने भाइयो को राज्य-सिहासन पर बिठा-बिठा कर युद्ध का मोर्चा चालू रखा । वह स्वयं इधर-

उधर घूम फिर कर युद्धोपयोगी सामग्री जुटाता रहा तथा अपने सम्बन्धी और मित्ररूप अनेक राजपूतों को प्रोत्साहित करता रहा। लक्ष्मसिंह बहुत रणकुशल तथा अत्यन्त वीर-प्रकृति का महायोद्धा था। उस समय चित्तौड-राज्य और उसके समीप के सभी राजपूतो पर उसका बहुत अधिक प्रभाव था। उसके सभी भाई बडे शूरवीर और अपने ज्येष्ठ बन्धु की आज्ञा को शिरोधार्य करने वाले श्रद्धान्वित थे। उसके अनेक पुत्र थे और वे सभी बडे शूरवीर और अपने पिता के पूर्ण भक्त थे। इन पुत्रो मे से ७ पुत्र भी उस युद्ध मे वीरगति को प्राप्त हो गये थे। इस प्रकार युद्ध करते-करते जब चित्तौड़ के सभी मुख्य योद्धा और सामत राजपूत खत्म हो गये तब लक्ष्मसिंह ने अब और अधिक समय तक युद्ध को चालू रखने की स्थिति न देखी। उधर, अलाउद्दीन ने एक तरफ से किले की दीवारें तुड़वा कर अपने सैन्य को किले के अन्दर पहुँचा देने की स्थिति प्राप्त कर ली थी। इस कारण लक्ष्मसिंह ने, जैसा कि सभी दुर्गपति किया करते हैं, युद्ध की अन्तिम योजना का विचार किया और तदनुसार अपनी सर्व राज्य सपत्ति-और पद्मिनी आदि राजपरिवार के प्रधान स्त्रीवर्ग को भस्मसात कर देने की व्यवस्था की। अन्तिम दिन, वह अवशिष्ट योद्धाओ को साथ लेकर किले से उतरा और अलाउद्दीन के सैन्य पर टूट पडा। अलाउद्दीन की सैन्य-संख्या बहुत बड़ी थी इसलिए वे इने-गिने राजपूत कितने समय तक टिक सकते थे ? पर, वे क्षत्रिय वीर तो अपने कुल, देश और धर्म की रक्षा के निमित्त रणभूमि मे प्राणोत्सर्ग करने के क्षण को मगलमय उत्सव समझते थे, इसलिए शत्रु कैसा है और उसकी कितनी शक्ति है इसका वे कभी विचार नही करते थे। भट लक्ष्मसिंह, उसी क्षात्रधर्म का पालन करता हुआ, अपने अनेक पूर्वजो से पूजित राष्ट्र-तीर्थस्वरूप चित्तौड की उस पुण्यभूमि का अपने देवाशी रक्त से तर्पण कर स्वर्गलोक में चला गया।

चित्तौड एव मेदपाट-राज्य का मुख्य स्वामी तथा जिसके निमित्त यह महायुद्ध हुआ उस रानी पद्मिनी का पति रावल रत्नसिंह भी उसी के साथ युद्ध मे मारा गया। इस प्रकार उस युद्ध मे, चित्तौड़ राज्य के गुहिलोतवशीय रावल बापा की सन्तान के राज्यसिंहासन पर विराजमान होकर, कुछ-कुछ दिनो तक राज-छत्र धारण करने वाले, तेरह राणा मृत्यु को प्राप्त हो गये और चित्तौड का राजमन्दिर स्वामिहीन हो गया। भारत के राजपूती युद्ध के इतिहास का यह एक अद्भुत उदाहरण है, जिसकी तुलना कवियो ने पुराण-काल में होने वाले रामायण और महाभारत के युद्धो के साथ की है।

रामायण भारथ विध राणां, सूरां सुमिरण मरण तिसो ।
साको कीयो गढ लखमणसी, अवर न साको हुओ इसो ॥*

तेरा से समत वरस इकतीसे (सट्ठे ?), जवन हिंदवां हुआ जुद ।
राणे बात अवाढी राखी, तेरा पीढी झूझवी तद ॥

. .. .

उक्त वर्णन से यह निष्कर्ष निकलता है कि अलाउद्दीन द्वारा किये गये चित्तौड पर के उस आक्रमण में, चित्तौड का मुख्य रक्षक और युद्ध का प्रमुख नेता भड लक्ष्मसिंह था । यद्यपि प्रारम्भ में उस समय राज्य का स्वामी रत्नसिंह था और वही स्वर्गस्थ रावल समरसिंह के उत्तराधिकारी के रूप मे राज्यशासन करता था परन्तु, उसके राज्य का, और वश का भी, सर्वाधिक समर्थ पुरुष उस समय लक्ष्मसिंह ही था । उसी ने शायद अपने छोटे भाई रत्नसिंह को समरसिंह के नि सन्तान होने के कारण, राजगद्दी पर बिठाया था। पद्मिनी के साथ लग्न करने मे भी रत्नसिंह को अपने बडे भाई लक्ष्मसिंह की ही मुख्य सहायता मिली थी । लक्ष्मसिंह के वचन के आधार पर ही पद्मिनी के पिता ने रत्नसिंह को अपनी प्रिय पुत्री व्याही थी । उसी ने फिर, चित्तौड़ के सकट के समय पद्मिनी की रक्षा के निमित्त अपना सर्वस्व और अपना सारा वश-परिवार युद्ध मे होम दिया था। लक्ष्मसिंह की इस प्रकार की प्रमुखता के कारण, रत्नसिंह का नाम गौण बन गया था। अत एव पिछले ख्यातादि लेखको ने तो रत्नसिंह का नाम तक भी नही दिया और समरसिंह के बाद लक्ष्मसिंह का राजा होना लिख दिया है ।

लक्ष्मसिंह का सबसे बड़ा पुत्र अरसी था और छोटा अजयसिंह या अजैसी था । अजैसी उस युद्ध मे शायद पहले ही घायल हो गया था, सो उसको चित्तौड से बाहर सीसोदे भेज दिया गया था । वहा वह बहुत समय तक जीवित रहा । वह सीसोदे वाली शाखा के अवशिष्ट पुरुष के रूप मे अपनी जागीर की व्यवस्था करता रहा ।

लक्ष्मसिंह का बडा पुत्र अरसी अपने पिता के साथ लडाई में मारा गया था । उसका पुत्र वीर हमीर हुआ ।

लक्ष्मसिंह के मरने पर, उसके अवशिष्ट पुत्र अजैसी द्वारा मेवाड का राजतिलक हमीर को किया गया क्योकि वही उस समय मेवाड-राज्य के वास्तविक उत्तराधिकारी के रूप मे बचा था । हमीर की अवस्था उस समय कोई १०-१२

*यह पूरा कवित्त आगे दिया गया है ।

वर्ष जितनी होगी। वह अपने चाचा अजैसी की रक्षा मे पला था। उसीने उसको मेवाड राज्य के भावी स्वामी के रूप मे घोषित कर दिया था। वयस्क होने पर हमीर ने अपना वह उत्तराधिकार सभाला और पूर्वोक्त रूप से उसने मेवाड़-राज्य की चित्तोड मे पुनः सुप्रतिष्ठा की।

इस वर्णन से रत्नसिह का मेवाड़ राज्य की नामावली में वास्तविक स्थान क्या है और उसके विषय की समस्या का क्या स्वरूप है, यह स्पष्ट हो जाता है। रत्नसिह की समस्या का यह निष्कर्ष हमने मेवाड के ऐतिहासिक साधनो के आधार पर ही निकाला है। ये साधन यद्यपि अस्त-व्यस्त स्वरूप के हैं, परन्तु उन सबका तारण करने पर यही वास्तविक तथ्य प्रकट होता है।

अब हम यहा पर इन साधनभूत उल्लेखो का क्रमशः परिचय देते हैं

१. रत्नसिह अलाउद्दीन की चढाई के समय चित्तोड का स्वामी था, यह उपर्युक्त दरीबे वाले लेख से सर्वथा निश्चित है।

२. रत्नसिह को समरसिह रावल ने चित्तोड़ का अपना राजसिंहासन सौंपा यह उल्लेख महाराणा कुंभा द्वारा तैयार कराई गई कुंभलमेर की प्रशस्ति में स्पष्ट रूप से किया गया है। महाराणा कुभा ने ही बड़ी खोज के साथ अपने पूर्वजों की वंशावली निश्चित करवाई थी इसलिये उसके कथन में किसी शका का स्थान नही हो सकता। कुंभावाली कुंभलमेर की प्रशस्ति में चित्तोड के मूल स्वामी रावल समरसिह के उल्लेख के बाद निम्न प्रकार का श्लोक दिया हुआ है—

स (समरसिंहः) रत्नसिंह तनयं नियुज्य स्वचित्रकूटाचलरक्षणाय।
महेशपूजाहतकल्मषौघ. इलापतिः स्वर्गपतिर्बभूव ॥
(कुंभलमेर की प्रशस्ति का १७६ वां पद्य)

यही पद्य, एकलिंग माहात्म्य के राजवर्णन में भी उद्धृत किया हुआ है जिसका सकलन महाराणा कुंभा के राजपण्डित कान्ह भट्ट ने किया था। उदयपुर के सरस्वतीभडार मे यह ग्रन्थ सुरक्षित है।

स्वर्गीय ओझाजी ने इस पद्य का यह अर्थ लगाया कि महारावल समरसिह, अपने पुत्र रत्नसिह को चित्रकूट का राज्य देकर, स्वय स्वर्ग चले गये। वे लिखते हैं—'मेवाड़ का स्वामी रत्नसिह समरसिह का पुत्र था जैसा कि राणा कुंभकर्ण के समय के स० १५१७ के कुंभलगढ के शिलालेख और एकलिंगमाहात्म्य से पाया जाता है। इन दोनो मे यह भी लिखा है कि समरसिह के बाद उसका पुत्र रत्नसिह राजा हुआ। (राजपूताने का इतिहास, भा. २, पृ. ४८५)।

ओझाजी ने 'तनय' का अर्थ औरस पुत्र समझा मालूम देता है और इसलिये उन्होंने रत्नसिंह को समरसिंह का पुत्र कहा है। परतु, जैसा कि आगे दिये जाने वाले इसी प्रकार के अन्यान्य अनेक प्रमाणों से ज्ञात होता है, रत्नसिंह समरसिंह का औरस पुत्र नही था। वह तो सीसोदें वाले भीमसी का पौत्र और जयसिंह (जेसिंग) का पुत्र था और लक्ष्मसिंह का छोटा भाई था। समरसिंह के कोई पुत्र न होने से रत्नसिंह को गोद बिठा कर उसको राज्य का स्वामी बनाया गया होगा। राजपूतो मे राजा के सन्ततिहीन होने पर उसके वश के किसी निकटस्थ और योग्य जन को गादी पर बिठा कर राज्य का स्वामी बनाया जाता है, जो प्रायः सर्वविश्रुत बात है।

अतः कुम्भलगढ वाले उक्त प्रशस्ति-पद्य का वास्तविक अर्थ यह है कि समरसिंह ने रत्नसिंह को अपना तनय अर्थात् पुत्र बनाकर उसे चित्रकूट की रक्षा का भार सौंपा और स्वयं महेश्वर की आराधना करता हुआ स्वर्ग सिधारा। इस प्रकार किसी राजा का जो उत्तराधिकारी होता है वह उसका पुत्र ही कहलाता है। जो व्यक्ति दत्तक के रूप में किसी अन्य कुटुम्ब मे जाता है वह, हिन्दु धर्म-शास्त्र के अनुसार, उस कुटुम्ब का पुत्र या सन्तान ही कहलाता है। इसलिये रत्नसिंह को समरसिंह का तनय या पुत्र लिखना सर्वथा परम्परारूढ और सुसंगत है।

रत्नसिंह किसका पुत्र था, इसके बारे में स्वर्गीय म. म. ओझाजी को भी कुछ भ्रम ही रहा और इस विषय का ऊहापोह करते हुए उन्होने मुंहता नैणसी की ख्यात का भी उल्लेख कर उस पर अपना भ्रमात्मक निर्णय दे दिया। ओझाजी लिखते हैं कि—"मुहणोत नैणसी अपनी ख्यात मे लिखता है कि रतनसी (रत्नसिंह) पद्मणी (पद्मिनी) के मामले में अलाउद्दीन मे लड़कर काम आया। परतु, वह रतनसिंह को एक जगह तो समरसी (समरसिंह) का पुत्र और दूसरी जगह अजैसी (अजयसिंह) का पुत्र और भड लखमसी (लक्ष्मसिंह) का भाई बतलाता है, जिनमें से पिछला कथन विश्वासयोग्य नही है क्योंकि लखमसी अजैसी का पुत्र नही किन्तु पिता और सीसोदे का सरदार था। इस प्रकार रत्नसिंह लखमसी का भाई नहीं, किंतु मेवाड का स्वामी और समरसिंह का पुत्र था, जैसा कि राणा कुम्भकर्ण के समय के वि० सं० १५१७ (ई० सं० १४६०) के कुंभलगढ के शिलालेख और एकलिंग-माहात्म्य से पाया जाता है। इन दोनो मे यह भी लिखा है कि समरसिंह के पीछे उसका पुत्र रत्नसिंह राजा हुआ। उसके मारे जाने पर लक्ष्मसिंह चित्तौड की रक्षार्थ म्लेच्छों (मुसलमानो) का संहार करता हुआ अपने सात पुत्रो सहित मारा गया।"

म. म. ओझाजी को मुंहता नैणसी की ख्यात के भ्रष्ट पाठ के कारण यह सारा भ्रम हुआ। नैणसी की ख्यात में, जो हमने अपने प्रतिष्ठान द्वारा प्रकाशित कराई है और जिसका पाठ परिश्रमपूर्वक तैयार कराया गया है, इस विषय का कथन निम्न प्रकार लिखा मिलता है—

"रतनसी 'अजैसी रो' [पाठ गलत है—'जैसी रो' चाहिये भड़ लखमसी रो भाई। पदमिणी रे मामले लखमसी नै रतनसी अलावदी सू लड़ ने काम आया। एक वार पातसाह चढ़ खड़ीया हुता सु पछै पुर रा डैरा सू इणां पाछो तेडायो। वारे दिन एक-एक वेटो (गलत पाठ है–'भाई' चाहिए) लखमसी रो गढ सू उतर लड़ियो। तेरमैं दिन जुहर कर राणो लखमणसी रतनसी काम आया। भड लखमसी रो वेटो अनतसी जालोर परणीयो हुतो, सु उठै कानड़दे साथै काम आयो सु जालोर में डूंगरो वाजे छै। अरसी साथै कांम आयो। तिण रो वेटो राणो हमीर चीतोड़ वरस ६४, मास ७, दिन १ राज कियो। १ अजैसी गढ-रोहे काढीयो। तिणरा कुभावत ककड़, मांकड़ कांम आया। ओझड़, पेथड़ रा भाखरोत।" (मुंहता नैणसी री ख्यात, भाग १, पृष्ठ १४—राजस्थान पुरातन ग्रथमाला प्रकाशन)

नैणसी की ख्यात के लिपिकर्ता ने रतनसी के पिता का नाम, शब्दभ्रम के कारण, 'जैसी' की जगह 'अजैसी' लिख दिया और इस कारण म. म. ओझाजी को इस उल्लेख के बारे में भ्रम होना स्वाभाविक ही था, क्योकि अजैसी लखमसी का पुत्र था, यह उल्लेख नैणसी के इसी वर्णन में आगे आया है; अत: ओझाजी को नैणसी के कथन में परस्पर विसगति दिखाई देना स्वाभाविक है। रत्नसिह भड लक्ष्मणसिह का भाई था, यह कथन शायद, नैणसी के सिवा अन्य किसी ख्यात या काव्य ग्रन्थ में, ओझाजी को उस समय नहीं मिला था, इसलिए तथा नैणसी की ख्यात का भी 'जैसी' के वदले 'अजैसी', ऐसा गलत नाम वाला पाठ देखने मे आया, अत: उनको नैणसी के कथन को अप्रामाणिक मानना पड़ा। पर, वास्तव में, नैणसी का उल्लेख सर्वथा संगत ही है, क्योकि वह उसको भड़ लखमसी का भाई भी स्पष्ट कह रहा है और दोनो भाई पद्मिनी वाले युद्ध मे काम आये, यह भी साथ में स्पष्ट वता रहा है। रत्नसिह लखमसी का छोटा भाई था, यह अव आगे दिये जाने वाले 'अमरकाव्य' के विस्तृत उल्लेख पर से सिद्ध हो रहा है। लखमसी सीसोदे शाखा वाले जयसिह का पुत्र और भीमसिह का पौत्र था, यह तो मेवाड़ के सभी ज्ञात लेखों से सिद्ध है ही।

'जैसी' और 'अजैसी'-विषयक यह नाम-भ्रम केवल नैणसी की ख्यात में ही

नही मिलता, परतु इस प्रकार की अन्यान्य ख्यातो और ग्रन्थों आदि मे भी उपलब्ध होता है। उदाहरणस्वरूप, कवि मान कृत 'राजविलास' ग्रन्थ में भी भीमसिंह के पुत्र के रूप में 'जयसी' की जगह 'अजयसी' नाम लिखा है। यथा—

भीम सरिसे भारथनि, भल भीम भलाया।
सत्रव कहू न रहि सकै, सब जगत सुधाया॥
रान अजायसी वीर रस, खल जूह खिलाया।
नारद तुंवर नच्चिया, गुण ग्रंधव गाया॥
लखमसीह जस लोभीया, वसु घण वरसाया।
राजस गुण जुत रति रवन, अवतार उपाया॥

यह राजविलास भाषा-ग्रन्थ कवि मानसिंह ने महाराणा राजसिंहजी के समय में बनाया। राजसिंहजी की मृत्यु सं० १७३७ में हुई थी अतः उसके पहले ही ५-७ वर्ष पूर्व यह ग्रन्थ बना होगा। इसमें सीसोदे की शाखा वाले राणा-पदधारी सामन्ताधिपो की वशावली दी है, जिसमें हमीर के पूर्वजो के नामो में भीम, अजयसिंह, लखमसी, अरसी और हमीर यह क्रम दिया है, जब कि राजप्रशस्ति आदि अन्य ग्रन्थों और शिलालेखों मे स्पष्टतया 'जयसिंह' नाम दिया गया है। राजविलास की भूमिका में इस वशानुक्रम की शुद्ध तालिका दे दी गई है और उसमें 'अजयसिंह' की जगह 'जयसिंह' नाम दिया गया है। (राजविलास, भूमिका, पृष्ठ १६)

स्वय म. म. ओझाजी ने भी अपने 'उदयपुर राज्य का इतिहास' नामक प्रसिद्ध ग्रन्थ मे, शिलालेखो आदि के आधार पर राणा शाखा की विशुद्ध वंशावली का जो तुलनात्मक कोष्ठक दिया है उसमे भी इस शाखा के १२ वें क्रमांक पर, भीमसिंह के बाद 'जयसिंह', ऐसा ही नाम दिया है। केवल एक मुंहता नैणसी के ख्यात वाले कोष्ठक मे अजयसिंह नाम लिखा है जो उपरि उल्लिखित लिपिकर्ता के भ्रम के कारण ही है। (म. म. ओझाजी का उदयपुर राज्य का इतिहास, पृष्ठ ५०७)।

म. म. ओझाजी ने नैणसी की ख्यात का जिक्र करते हुए जो यह लिखा है कि—'वह एक जगह तो रतनसी को समरसिंह का पुत्र लिखता है और दूसरी जगह अजैसी का पुत्र और भड़ लखमसी का भाई लिखता है, सो यह दूसरा कथन विश्वासयोग्य नही मालूम देता :' ओझाजी को नैणसी के कथन में जो विसंगति मालूम दी उसका उक्त प्रकार से 'जैसी' के स्थान पर 'अजैसी' शब्द का पाठ भ्रमात्मक उल्लेख ही कारण है। और फिर, नैणसी ने रतनसी को

समरसी का पुत्र कही नही लिखा । उसने तो ख्यात मे केवल समरसिंह के बाद चित्तोड का राजा 'रावल रतनसी' पदमणी वाला बना, इतना ही सूचित किया है । (देखो, नैणसी की ख्यात, पृ० १३) सो यह उल्लेख तो जैसा हमने ऊपर सिद्ध किया है सर्वथा संगत ही है । इसमें नैणसी के उल्लेख की कोई विसंगति नही है ।

रत्नसिंह गढमंडलीक लक्ष्मसिंह का छोटा भाई था और सीसोदिया शाखा वाले जैसिंग (जयसिंह) का पुत्र था, इसका स्पष्ट उल्लेख महाराणा अमरसिंह (प्रथम) के चरित्र-वर्णन-स्वरूप बनाये गये संस्कृत 'अमरकाव्य' मे मिलता है । यह काव्य सुप्रसिद्ध भट्ट रणछोड़ कवि की रचना है, जो महाराणा राजसिंह का भी मुख्य राजपण्डित था । इस पण्डित ने राजसिंह के चरित्र-वर्णन-स्वरूप 'राजप्रशस्ति' नामक संस्कृत काव्य की रचना की थी, और यह पूरा काव्य, सुप्रसिद्ध सरोवर राज समुद्र के तट पर, नौ-चोकी में शिलाओं पर खुदवा कर लगवा दिया था । इस राजप्रशस्ति में भी भट्ट रणछोड ने गढमंडलीक लक्ष्मसिंह को जयसिंह का पुत्र कहा है और रत्नसिंह को, उसका छोटा भाई बताकर, पद्मिनी का पति लिखा है । इसी पद्मिनी के निमित्त अलाउद्दीन के साथ घोर युद्ध हुआ जिसमें लक्ष्मसिंह अपने १२ भाइयों और ७ पुत्रों के साथ मारा गया ।

आश्चर्य है कि राजप्रशस्ति मे इस प्रकार स्पष्ट उल्लेख मिलने पर भी ओझाजी जी जैसे विदग्ध विद्वान् का इस की तरफ क्यो लक्ष्य नही गया ?

राजप्रशस्ति महाकाव्य के ३रे सर्ग के प्रारंभ मे ही, लक्ष्मसिंह के पूर्वजो की नामावली दी गई है और उसके पौत्र हमीर तक का संक्षेप मे निम्न प्रकार से उल्लेख किया है :—

तस्य पुत्रो नरपतिरानाऽस्य जासकर्णकः ।
तत्सुतो नागपालोऽस्य पुण्यपालः सुतोऽस्य तु ।।२।।

पृथ्वीमल्लः सुतस्तस्य पुत्रो भुवनसिंहकः ।
तस्य पुत्रो भीमसिंहो जयसिंहोऽस्य तत्सुतः ।।३।।

लक्ष्मसिंहस्त्वेष गढमण्डलीकाभिधोऽस्य तु ।
कनिष्ठो रत्नसी भ्राता पद्मिनी तत्प्रियाऽभवत् ।।४।।

तत्कृतेऽलावदीनेन रुद्धे श्रीचित्रकूटके ।
लक्ष्मसिंहो द्वादश-स्वभ्रातृभिः सप्तभिः सुतैः ।।५।।

सहित. शस्त्रपूतोऽसौ दिवं यातोऽस्य चात्मजः
एक उर्वरितोऽजेसी राज्यं चक्रे ततोऽरसी ।।६।।

ज्येष्ठः सुतः पितुस्सर्गे यो हतो तत्सुतो दधे ।
राज्य हमीरदानोन्द्रो मूर्द्ध गङ्गाप्रदर्शकः ।।७।।
(राजप्रशस्ति काव्य, सर्ग ३, पद्य २—७)

राजप्रशस्ति काव्य भट्ट रणछोड ने मुख्य करके राजा राजसिंह का चरित्र वर्णन करने के लक्ष्य से बनाया था इसलिये इसमे सीसोदिया राजवश के पुनरुद्धारक राना हमीर के पूर्वजो का केवल नामोल्लेख करना ही उसने पर्याप्त समझा। परंतु, इस कवि ने इस के पूर्व महाराणा अमरसिंह (महाराणा प्रताप के उत्तराधिकारी) के चरित्र निरूपणात्मक 'अमरकाव्य' की रचना की थी और इसमें हमीर के पूर्वज सीसोदियाशाखीय रानाओ के विषयमें कुछ विशेष परिचय लिखा है, जो उस को मेवाड राज्य के प्राचीन वृत्तान्तो द्वारा ज्ञात हुआ था। उपर्युद्धृत राजप्रशस्ति काव्य के जिन ५ पद्यो अर्थात् श्लोको मे जो कथन सूचित किया गया है, उस कथन के विस्तार स्वरुप 'अमरकाव्य' में कोई ८० से अधिक पद्य लिखे गये हैं। अमरकाव्य-कथित वर्णन के आधार पर ही रत्नसिंह विषयक सारी समस्या स्पष्ट हो रही है। अतः हम यहा पर अमरकाव्य-गत इस कथन पर कुछ विस्तार से विवेचन करना चाहते हैं।

अमर-काव्य का परिचय

इस काव्य की एकमात्र प्राचीन एव जीर्ण पोथी उदयपुर के सरस्वती-भडार मे उपलब्ध है। इस पोथी के प्रारम्भ के तथा बीच के भी कुछ पन्ने नष्ट हो गये हैं, जिससे ग्रन्थारम्भ का मुख्य भाग नही मिलता तथा बीच मे भी कई जगह वर्णन त्रुटित हो गया है। स्वर्गीय ओझाजी को इस ग्रन्थ के देखने का अवसर नही मिला। वीरविनोद के कर्ता ने इस ग्रन्थ का उल्लेख तो किया है पर इसका ठीक ढंग से अवलोकन किया गया हो ऐसा उस ग्रन्थ से मालूम नही देता।

इस काव्य मे, जैसा कि ऐसे ही अन्यान्य ग्रन्थो मे भी दिया गया है, मेवाड के राजवश का प्रादुर्भाव बतलाते हुए सर्वप्रथम गुहिलोत वश की स्थापना का वर्णन किया गया है। इसी वश मे प्रसूत राजा बाष्प अर्थात् बप्प या बापा ने किस तरह चित्रकूट का राज्य प्राप्त किया, इसका वर्णन दिया गया है, जो पिछले अन्यान्य ग्रन्थो, ख्यातो आदि मे भी मिलता है। यही बाप्प या बापा सर्वप्रथम रावल-पद का धारण करने वाला बना। इसी ने चित्रकूट को अपना मुख्य राज्यस्थान बनाया। 'अमर-काव्य' के लेखक के मतानुसार बापा ने ६८ वर्ष तक राज्य किया (अथवा उसकी पूरी आयु ६८ वर्ष की हो)। उसके वश में पीछे से कर्ण नामका राजा चित्रकूट का स्वमी बना। उसके माहप और राहप नामक दो पुत्र थे, जिनमे राहप अधिक योग्य और पराक्रमी हुआ। उसने किसी एक

शत्रु को जीतकर 'राना' विरुद प्राप्त किया और सीसोद नामक स्थान को आबाद कर वह उसका स्वमी बना। उसके वंश का पीछे से अधिकाधिक अभ्युदय होता गया और वह मेवाड़ राज्य का सबसे मुख्य सामत-घराना बन गया।

इस सीसोद वश मे, बाद मे, भुवनसिंह नामक राजा हुआ जिसकी शरण में, गुजरात के राजा से डर कर चौहान वशी राजा पीतू (कीतू?) आ कर रहा था। उस भुवनसिंह का पुत्र भीमसिंह हुआ और उसका पुत्र जयसिंह हुआ। यह जयसिंह गढमडल मे जा कर रहा था और उसने उसके आसपास के प्रदेश को अपने अधीन किया था; अतः उसको गढमंडलीक का पद मिला था। इसी जयसिंह का ज्येष्ठ पुत्र लक्ष्मसिंह हुआ जो अपने पिता के राजविरुद गढमंडलीक के उप-पद से पहचाना जाता था। यह बड़ा वीर पुरुष था इस लिये यह 'भड' के विरुद से भी प्रख्यात हुआ।

'अमरकाव्य' मे इस गढमंडलीक के पराक्रमो का विस्तार से वर्णन दिया हुआ है। लक्ष्मसिह के अतिरिक्त जैसिंग अर्थात् जयसिंह के रत्नसिंह, करन आदि अनेक पुत्र थे, जिनमे से रत्नसिंह रावल समरसिंह के बाद चित्तौड के राज्य का मुख्य स्वामी बना।

लक्ष्मसिंह के भी अरिसिंह, अनन्तसिंह, अजैसी आदि कई पुत्र थे। भड लक्ष्मसिंह के वर्णन से सबन्धित अमरकाव्य में कोई ६० जितने पद्य लिखे गये हैं। पद्मिनी के विषय को लेकर अलाउद्दीन के साथ के संघर्ष का वर्णन भी इस काव्य मे कुछ मौलिक तथ्य के सूचक रूप मे दिया गया है, जो अन्य किसी ग्रन्थ मे देखने मे नही आया है। मेवाड़राज्याश्रित अन्य कवियों के प्रशस्त्यात्मक काव्यो में इस वर्णन का कुछ भी सूचन नही मिलता है। मेवाड़ के राजवंश का यथा-ज्ञात या यथा-श्रुत वर्णन करने वाला संस्कृत मे लिखा गया यह प्रथम ग्रन्थ है। अतः यह काव्य ऐतिहासिक महत्त्व रखता है।

इस काव्य में हमीर से लेकर महाराणा अमरसिंह तक का जो उपयुक्त वर्णन लिखा है वह पिछले अन्यान्य ऐतिहासिक उल्लेखो से बहुत ही सुसगत मालूम देता है; अतः हमीर के अव्यवहित पूर्ववर्ती उसके पिता, प्रपिता, बाबा आदि का जो वर्णन इसमें है वह अवश्य ही प्रमाणभूत पुरातन उल्लेखो के आधार पर आधारित होना चाहिये।

चित्तौड़ पर अलाउद्दीन के आक्रमण के कारण नष्ट हुई ऐतिह्य सामग्री को संकलित करने का जिस तरह पूर्व में महाराणा कुभा ने प्रयत्न किया और उसके आधार पर कुम्भलगढ प्रशस्ति और एकलिंगमाहात्म्य जैसी रचनाओ का निर्माण

हुआ इसी तरह महाराणा प्रताप के समय, अकबर के दुष्टातिदुष्ट आक्रमण के कारण, चित्तौड़ की जो ऐसी साहित्यिक सपत्ति नष्ट होगई थी, उसका पुनः संकलन महाराणा अमरसिंह(प्रथम)के समय में किया गया था। पृथ्वीराज-रासो का जो विशालकाय स्वरूप वर्तमान में उपलब्ध है, उसका संकलन भी उसी समय हुआ। रणछोड भट्ट का यह 'अमर-काव्य' भी उसी प्रकार के प्रयास का एक फल है। राजप्रशस्ति, राजप्रकाश, अमरप्रकाश आदि और भी ऐसी रचनाए उसी समय बनी जिनमे मेवाड़ के विस्मृतप्राय प्राचीन राजवश के सूत्रो का अनुसधान मिलाने का प्रयत्न किया गया। 'अमरकाव्य' के कर्ता के सामने ऐसी कुछ पुरातन एवं अधिक विश्वसनीय सामग्री रही मालूम देती है जिसके आधार पर उसने लक्ष्मसिंह-विषयक उक्त प्रकार से विस्तृत और सुसगत वर्णन लिखा है। हम यहां पर इस काव्य का यह पूरा प्रकरण नीचे उद्धृत करते हैं जिससे पाठकों को इसके उल्लेखो का मूल स्वरूप ज्ञात हो जायगा। साथ ही, हम इसके पद्यों का सार देते हैं जिससे काव्य मे किस तरह यह सारा वर्णन लिखा गया है, इसका भी पाठको को ठीक-ठीक ज्ञान हो जायगा।

जैसा कि ऊपर सूचित किया गया है इस काव्य की एक ही प्राचीन एवं जीर्ण हस्तलिखित प्रति उदयपुर के सरस्वती-भडार मे उपलब्ध है, जो प्रायः २०० वर्ष से अधिक पुरानी मालूम देती है। पर, यह त्रुटित और खण्डित है। इसके मध्य के कुछ पन्ने भी नष्ट हो गये हैं। लिखावट भी इसकी शुद्ध नही है। लिखने वाले के हाथ से बीच-बीच मे कुछ शब्द, वाक्य और पंक्तियां भी छूट गई हैं। यह एक सीधा वर्णनात्मक काव्य है। इसमें कही-कही सर्ग के सूचक कुछ शब्द लिखे हैं, पर वे स्पष्ट नही हैं। श्लोको का क्रमांक आदि भी नही दिया गया है। पत्रों के अक भी बहुत से नष्ट हो गये हैं, जिससे पूर्वापर अनुसन्धान मिलाना भी कठिन बन गया है।

मालूम देता है कि जिस पुरानी प्रति पर से यह प्रति लिखी गई है वह प्रति भी कुछ अशुद्ध और खण्डित थी, क्योकि इस प्रति मे लिपिकर्त्ता ने कही-कही अक्षर और पक्तियो के लिए रिक्त स्थान छोड़ रक्खे हैं, जिसका तात्पर्य यह है कि उस मूल प्रति मे भी कोई-कोई स्थल खण्डित था। भट्ट रणछोड़ के बाद इस रचना की सुरक्षा नही हो सकी और इसका खास प्रसार भी नही हो सका।

यद्यपि इस प्रति पर 'अमर-काव्य' ऐसा अस्पष्ट नाम लिखा हुआ है, पर मूल में कही यह नाम नही लिखा गया है। इसके अन्तिम भाग मे राणा अमरसिंह

का चरित्र-वर्णन अवश्य है, पर यह परिमित रूप में है। जिस तरह महाराणा प्रताप का चरित्र वर्णित किया है उसी तरह अमरसिंह का भी। उसके आगे के भाग मे, अमरसिंह की मृत्यु के बाद, जगतसिंह का कितना'क हाल लिखा है और फिर अन्त मे राजसिंह के सिंहासनारूढ़ होने का थोडा-सा वर्णन दिया है।

अन्तिम श्लोक में यह लिखा है कि इस राजा राजसिंह का समग्र वृत्तान्त राजप्रशस्ति काव्य में दिया गया है, अतः वह सब वही से ज्ञात करना चाहिए। यथा—

राजप्रशस्तौ लिखितो निखिलोऽस्य पराक्रमः।
यशस्कारिचरित्रौघस्तत्र पश्यन्तु तत्कथाः॥

इस कथन से ज्ञात होता है कि भट्ट रणछोड कवि ने इस ग्रन्थ की रचना का प्रारंभ तो महाराणा अमरसिंह के जीवनकाल में ही कर दिया था और इसलिए प्रारंभ में ईश्वरादि देवों की जो स्तुति की है, उसमे अमरसिंह के कल्याण और अभ्युदय का उल्लेख ही मुख्य रूप से किया है; पर, महाराणा अमरसिंह की मृत्यु हो जाने पर जगतसिंह राज्यारूढ हुए और फिर उनकी भी थोड़े ही समय बाद मृत्यु हो जाने पर राजा राजसिंह राज्याधिष्ठित हुए। राजा राजसिंह अपने पिता जगतसिंह और दादा अमरसिंह से भी अधिक प्रतापी और पराक्रमी निकले। भट्ट रणछोड उनका भी राज्यमान्य पण्डित रहा अतः उसने फिर उनके सारे पराक्रमो और यशस्कारी कार्यों का विस्तृत वर्णन करने की दृष्टि से राजप्रशस्ति काव्य की रचना की और पूर्वरचित रचना को अमरकाव्य की सज्ञा देकर, इसे राजप्रशस्ति के पूर्व भाग के रूप में निबद्ध कर दिया। राजप्रशस्ति को राजा राजसिंह ने पूर्व कथनानुसार अपने बनवाये हुए नवीन एव अनुपम राजसमुद्र नामक सरोवर की पाल पर के नौ-चौकी स्थान पर शिलाओ में खुदवा कर लगवा दिया, जिससे वह सुरक्षित एव सुप्रसिद्ध हो गया।

प्रस्तुत अमरकाव्य मे मेवाड़ राज्य के पूर्व-प्रसिद्ध गुहिलोत वंश एवं उत्तर-काल-प्रसिद्ध सीसोदीया वंश के राज्यकर्त्ताओं की विस्तृत वशावली दी गई है; इसलिए उदयपुर में उपलब्ध जीर्ण प्रति के अन्त मे किसी पण्डित ने पीछे से यह पंक्ति लिख रखी है कि—

श्रीअमर-काव्यवंशावलीग्रन्थोऽयमस्ति।

अर्थात्—यह अमरकाव्य वंशावली रूप ग्रन्थ है।

कवि हेमरतन स्वहस्त-लिखित प्रति का अन्तिम पत्र

कवि हेमरतन की स्वहस्त-लिखित प्रति का आद्य पत्र

कवि हेमरतन रचित

गोरा बादिल चरित्र

अथवा

गोरा बादिल पदमिणी कथा चउपई

[मङ्गलाचरण, कथा प्रारम्भ]

।। श्री गणेशाय नमः ।।

दोहा

सुख संपति दायक सकल, सिधि बुधि सहित गणेस ।
विघन विडारण विनयसुं, पहिली तुझ प्रणमेस ।। १ ।।
ब्रह्म विष्णु शिव सइं मुखइ, नितु समरइं जसु नाम ।
ते देवी सरसति तणइ, पदयुगी करू प्रणाम ।। २ ।।
पदमराज वाचक प्रभृति, प्रणमी निज गुरु पाइ ।
केलवस्यु साची कथा, काणि न आवइ काइ ।। ३ ।।
नव रस दाखइं नव नवा, सयण सभा सिणगार ।
कवियण मुझ करयो कृपा, वदता वचन विचार ।। ४ ।।
वीरा रस सिणगार रस, हासा रस हित हेज ।
सांमि धरम रस साभलु, जिम हुइ तनि अति तेज ।। ५ ।।
सांमि धरम जिणि साचविउ, वीरा रस सविसेप ।
सुभटां महि सीमा लही, राषी खित्रवट रेष ।। ६ ।।
गोरू रावत अति गुणी, बादिल अति बलवंत ।
बोलिसु वात बिहु तणी, सुणयो सगला संत ।। ७ ।।
रतनसेन राजा तणइ, छलि हूआ अति छेक ।
गोरू बादिल बे गुणी, सत्तवत सविवेक ।। ८ ।।
युद्ध करी जिम जस लीउ, वसुहा हूआ विख्यात ।
चित्रकोट चावु कीउ, ते निसुणु सहू वात ।। ९ ।।

[चित्रकूट वर्णन]

चौपई

चित्रकूट पर्वत चउसाल, वसुधा लोचन जिसु विशाल ।
सुरनर किंनर तणु निवास, राम रह्या था जिहा वनवास ॥ १० ॥

गिरवर ऊपरि दूठ दुरग, विषम ठाम गढ अतिहि उतग ।
गयणह पडण विधाता डरी, जाणि कि थंभ दोउ थिर करी ॥ ११ ॥

विषम घाट गढ विसमी पोलि, अति ऊची कोसीसां ओलि ।
सचा माहि घणा सांसता, अणभग कोट घणी आसता ॥ १२ ॥

वांक दुवारा विसमी गली, विकट कोट अति विसमु वली ।
अणजाणिउ न सकइ नीकली, कद ही कोइ न सक्कइ कली ॥ १३ ॥

माहि मनोहर महल अनेक, सगला लोक वसइं सविवेक ।
त्याग भोग सहु लाभइ तिहां, सुर इम जांणइ इणि गढ़ि रहां ॥ १४ ॥

चउरासी चोहटा हटसाल, मणिमय तोरण झाक झमाल ।
गोख घणा उंचा आवास, राज भवणि रूंधिउ आकास ॥ १५ ॥

घरि घरि गोख घणा पाखती, रगि रमइ बेठा दपती ।
गोखइ गोखि घणी जालिका, तिहां बेठी दीसइं बालिका ॥ १६ ॥

कमल वदन गजगति गामिणी, कोमल तन दीसइं कामिनी ।
सात भुंया उचा आवास, लोक वसइ सहु लील विलास ॥ १७ ॥

[रतनसेन राजा और पटराणी का वर्णन]

तिणि गढि राज करइ गहिलोत्र, रतनसेन राजा जस जोत्र ।
प्रबल पराक्रम पूर प्रताप, पेसी न सकइ जस घटि पाप ॥ १८ ॥

अवनि घणी जग अविचल आण, भालि तपइ जसु बारइ भाण ।
वेरी कद तणु । [१a] कुद्दाल, रण रसीउ नइ अति रढाल ॥ १९ ॥

पटराणी तसु परभावती, रूपइं रभा, सीलइ सती ।
इंद्र तणइ इद्राणी जिसी, तेहनइ ते पटराणी तिसी ॥ २० ॥

अवर अनेक अछइ तसु नारि, अपछर रभ तणइ अणुहारी ।
पिण मनि मांनी परभावती, तिणि पिणि मोहि लीओ निज पती ॥ २१ ॥

सतर भेद भोजन रसवती, केलवि जांणइ ते गुणवती ।
राजा तिणि रीझवीओ घणु, किसु घणुं, हिव ते हुं भणु ॥ २२ ॥

भोजन भगति करइ ते नारि, तु ते भूप करइ आहार ।
अवर तणउ कीधउ अनपाक, रतनसेन नइं लागइ खाक ॥ २३ ॥

माहोमाहि घणु मनि मोह, सहि न सकइ खिण एक विछोह ।
वीरभाण तसु सुसुत अतिसूर, प्रतपइ तेज तणु घटिपूर ॥ २४ ॥

चतुरंग सेन संपूरण साथ, नीतइ राज करइ नरनाथ ।
अरि सगळा नाख्या ऊछेद, खिति धरतां तसु नावइ खेद ॥ २५ ॥

सबल सूर साचा ससनेह, छल न करइं नवि दाखइं छेह ।
सुरपति दियइ जिणां री साखि,इसा सुभट सुघरि इक लाख ॥ २६ ॥

हय गय पायक रथनी संख, करे न सक्कइ को आकख ।
इण परि परिगह तणइ पडूरि, रतनसेन राजा भरपूरि ॥ २७ ॥

[राजा का भोजन-प्रसंग और राणी का व्यंग वचन]

एक दिवस भोजन नइ समइ, आवी दासी इम वीनवइ ।
सामि पधारू भोजन भणी, पाक हूआ हुई वेला घणी ॥ २८ ॥

आवी बइठो नृप बइसणइ, पटराणीसु प्रेमइ घणइ ।
थाल कचोला कनकह तणा, सोवन पाटि पथराव्या घणा ॥ २९ ॥

प्रीसइ भोजन भगति भंडार, नारी रंभ तणइ अणुहारि ।
राजा भोजन जीमइ रगि, विचि विचि वात करइ कणयगि ॥ ३० ॥

कदली दलसु घालइ वाउ, जिमतु जपइ ते नर राउ ।
आज न भोजन भावइ कोइ, नितु निसवादा तीमण होइ ॥ ३१ ॥

शाक पाक सगला पकवांन, धुरि निसवादा लागा धान ।
रूडी जुगति कर, रसवती, तव ते पभणइ परभावती ॥ ३२ ॥

आसगइ आंणी अभिमान, राणी बोलइ सुणि राजांन ।
भगति न भावइ मुझ केलवी, तु कोइ नारी आणु नवी ॥ ३३ ॥
परणु कोई जई पदमणी, ते जिम भगति करइ तुम्ह तणी ।
अम्हे जिमाडी जांणा नही, कोप कीउ कामिणि इम कही ॥ ३४ ॥

माणवती हुइ महिला मूल, माण गमाडइ विनय समूल ।
विनइ गयइ न रहइ सोहाग, विण सोहाग न लाग न भाग ।। ३५ ।।

[राजा की पद्मिनी परिणय की प्रतिज्ञा]

रतनसेन राजा रंढाल, तिजि भोजन ऊठिउ ततकाल ।
तु हुँ जु आणु पदमिणि, भगति जुगति जीमुं ते तणी ।। ३६ ।।

ए इम गरवी नारी [१ b] किसुं, नारी आगलि हु किम खिसु ।
असक्य नही हु आणण नारि, क्यु ए अबला कहइ अविचारि ।। ३७ ।।

[पद्मिनी स्त्री की शोध में राजा का प्रस्थान]

मुंछ मरोडी ऊभु थयउ, गरव ग्रही घर बाहरि गयु ।
रतनसेन राजा एकलु, साथि खवास करी इक भलु ।। ३८ ।।

सबल खजीनु साथइ लेइ, असि चडि चाल्या छांना वेइ ।
कोइ न जाणइ ए विरतंत, खितिपति मनि अति लागी खंति ।। ३९ ।।

पदम्रिणि परणी आवु घरे, नहि तरि रहिस्युं गिरि कंदरे ।
विण पदमिणि नवि पोढु, सेज, विण पदमिणि न हसु हित हेज ।। ४० ।।

एम प्रतिज्ञा कीधी पूर, राजा चालिउ साहस सूर ।
वीस त्रीस जोअण चालीया, तव ते बेही इम बोलीया ।। ४१ ।।

ऊषर खेत्र न लागइ बीज, विण झगडा न थपाइ धीज ।
विण बादल नवि वरसइ मेह, एक पखु नवि हुइ सनेह ।। ४२ ।।

गाम नही तु केही सीम, अगनि माहि नवि जामइ होम ।
सेवक जपइ सामी सुणउ, प्रगट प्रकासु मुझ मत्रणु ।। ४३ ।।

मरम पखे किम लहीइ माग, ताण्या विण किम लाभइ ताग ।
राजा जपइ पदमिणि भणी, मइ ए अवनि उलंघी घणी ।। ४४ ।।

पदमिणि तणा पठगा जिहां, ठावी ठोड वतावु तिहां ।
सेवक जंपइ सांमी सुणउ, खरच वरच साथइ छइ घणु ।। ४५ ।।

[राजा के पास पथी का आना]

पिणि नवि जाणी जां लगि पथ, तां लगि सगलु गोरख कंथ ।
वइठउ भूप जई तरू तलइ, पथी आविउ इक तेतलइ ।। ४६ ।।

भूख त्रिसि भेदाणु घणुं, पोतुं वीतु अमलह तणु ।
पंथ तणु वलि पूरू खेद, घटि सगलइ हूउ परसेद ॥ ४७ ॥

अटवी माहि घणु आकलइ, पिणि नवि कोई मांणस मिलइ ।
तिणि ते दीठउ भूपति जिसइ, पगतलि आवी पडीयो तिसइ ॥ ४८ ॥

राइ किआ सीतल उपचार, वाली चेतन पायुं वारि ।
अमल अमोलिक दैई करी, भांजी भूख गई नीसरी ॥ ४९ ॥

सावधांन हूउ पथी तेह, कर जोडी जपइ ससनेह ।
तइं मुझ कीधु अति उपगार, जनम दीउ मुझ बीजी वार ॥ ५० ॥

मुझ स [२ a] रिखु को कह्यो काम, हु सेवक नइ तु मुझ सामि ।
वलतु राइ भणइ सविसेस, तइ दीठा बहु देस विदेस ॥ ५१ ॥

[पथी द्वारा पदमिणी और सिंहलद्वीप का पता देना]

पुहवि फिरतइ तइ पदमिणी, काई नारि कठे ई सुणी ।
तव ते जंपइ सुण मुझ धणी, सघल दीपि घणी पदमिणी ॥ ५२ ॥

दक्षिण दिसि छइ शंघल दीप, सगला दीपां माहि प्रदीप ।
आडउ आवइ उदधि अथाह, तिणि तसु कोइ न लाभइ माह ॥ ५३ ॥

[राजा का सिंहलद्वीप को प्रस्थान]

इम निसुणी राजा रजोउ, सघल दीप दिसि चालीउ ।
पवन वेग चचल चतुरग, अबरि उड्या बेउ तुरंग ॥ ५४ ॥

गाम नगर पुर पाटण तणा, मारग माहि उलंघ्या घणां ।
अखलित गति उलघी मही, समुद्र समीपइ आव्या वही ॥ ५५ ॥

आगलि उदधि करइ कल्लोल, छिटकी रही चिहु दिसि जल छोल ।
पवन ति कोइ पइसइ नही, तु कुण माणस जाइ वही ॥ ५६ ॥

पांणी सु नवि चालइ प्रांण, उदधि तणा आवइं ऊधाण ।
रतनसेन चिति चिंतइ इसु, हिव जगदीस करीजइ किसु ॥ ५७ ॥

भूपति चिति चमकइ पदमिणी, जलधि वेल पिण वीहामणी ।
नइ पिण उडी गुल पिण मीठ, ए उखाणु आख्या दीठ ॥ ५८ ॥

वाघ अनइ दो तडि नु न्याइ, ए मुझ आज पहूतु आइ ।
केम करूं हिव चितुं काइ, मङु कोई अधिक उपाइ ।। ५९ ।।

[राजा को योगी का दर्शन]

फिरतइ एम पयोनिधि पास, दीठु जोगी एक उदास ।
साधइ पवन सदाई तेह, जगम जोग तणु गुण गेह ।। ६० ।।

सिध साधक जोगेसर जिती, पणमी पासि गयु भूपती ।
विनय करी राजा वीनवइ, वलि वलि सिर तसु चरणे ठवइ ।। ६१ ।।

सांमी शंघल दीपह तणु, मुझ मनि हरख अछइ अति घणु ।
तुम्ह भेटचां हिव भावठि टलइ, पदमिणी नारि किसी परि मिलइ।।६२।।

मुझ सुं सामि करू हिव मया, दुख देखतां बहु दिन थया ।
विनय वचन वीनवीआ जिएइ, सु प्रसन हूओ जोगी तिसइ ।।६३।।

नेत्र ऊघाडी निरखइ नूर, आयस मनि हूउ आणंद पूर ।
आवु रतनसेन राजांन, नाम कही तसु दीधु मांन ।। ६४ ।।

विसमय हूउ राजा भ(2b)णी, आ केम वात लही मुझ तणी ।
जोगी जंपइ सुणि राजांन, जु तु आयु इणि मुझ थानि ।। ६५ ।।

तु हिव सगलु होसी भलु, मत मन जाणइ छु एकलु ।
वीद्या अंबरि ऊडण तणी, समरी साही करि समरणी ।। ६६ ।।

[राजा का सिंहल द्वीप पहुँचना और पद्मिनी का परिचय प्राप्त करना]

बे असवार धरी निज बाथ, शघल दीपि गयु गुरूनाथ ।
नगर समीपइ आया जीसै, आयस हूउ अलोपह तिसइ ।। ६७ ।।

राजा रजिउ देखी दीप, जे जोवइ ते अतिहि उदीप ।
कोलाहल अति कसबु घणु, वणज अनइ व्यापारां तणु ।।६८।।

होइ हीउ दलाइ सही, त्रिरलु कोइक जाइ वही ।
आगलि पडहु फिरतु दीठ, तास लगइ ते आव्या नीठ ।। ६९ ।।

पूछण लागा पडह विचार, तव ते जंपइ सुणि असवार ।
संघलदीप तणु राजीउ, गुणे करी महिमा गाजीउ ।। ७० ।।

तास बहिनि परतिख पदमिणी, त्रिभुवनि ऊपम नही तसु तणी ।
अहनिसि पदमिणी ते इम बकइ, मुझ भाई जे जीपी सकइ ।। ७१ ।।

तेहनइ कंठि ठवु वरमाल, इम जपइ ते अबला बाल ।
हिव ते पडह वजावइ इसु, मुझ नइ जीपइ नही को तिसु ।। ७२ ।।

रणवट तणी रहू हिव वात, सतरज रामति खेलु घात ।
जु कोई मुझ जीपइ सही, तुमइ वात इसी छइ कही ।। ७३ ।।

अरध देस अरधु भडार, विहची आपु अधिक उदार ।
भगिनी वलि परतिष पदमिणी, परणावी दच्‍ु पहिरामणी ।। ७४ ।।

ए मुझ वाचा अविचल अछइ, इम म कहेज्यो न कहिउ पछइ ।
एम सुणी रंजिउ नरराइ, सतरंज रामति आवइ दाइ ।। ७५ ।।

भूप भणइ सभलि मुझ वात, सतरज रामति केही मात ।
जे जाणु ते लेज्यो दाण, पिण तुम्ह वात अछइ परमाण ।। ७६ ।।

एम कही ते मेल्हिउ माहि, रामति ऊपरि अधिकी चाहि ।
तिणि जाई सघलपति पासि, वीनवोउ सहु वचन विलास ।। ७७ ।।

शघलपति मनि हरखिउ घणु, तेडावी दीधु बेसणु ।
आगत सागति करि अति घणी, वात बिहु रमवानो वणी ।। ७८ ।।

बेठा बेही रमवा मणी, जाणि कि सिसहर नइ दिनमणी ।
पासइ बेठी ते पदमिणी, कोमल कमल वदन कामिणी ।। ७९ ।।

रतनसेन सतरजइ रमइ, तिम तिम नारि तणइ मनि गमइ ।
जु किम ई ए जोपइ दाण, तु मुझ वखत सही सुप्रमाण ।। ८० ।।

शंघल(३a) पति मनि शंका करइ, रतनसेन थी मन महि डरइ ।
मनमथ रूप मनोहर वेस, ए कोइक छइ सबल नरेस ।। ८१ ।।

केलि करता रामति रग, शंघल भूपति पामिउ भग ।
जेत्र अनइ जस हूउ घणु, परतु पुहतु पदमिणि तणु ।। ८२ ।।

[राजा द्वारा पद्मिनी का पाणिग्रहण]

कंठ ठवी कोमल वरमाल, जय जय शब्द जगावइ बाल ।
शघलदीप तणु हिव धणी, भगति करइ ते भूपति तणी ।। ८३ ।।

सामहणी अति मेली घणी, परणावी बहिनर पदमिणी ।
अरध देस अरधा भंडार, विहची दीधा अधिक उदार ॥ ८४ ॥

परिघल दीधी पहिरामणी, हरखित नारि हूई पदमिणी ।
बि सहस वांदी रूपनिधांन, पदमिणि पासि रहइ सुविधांन ॥ ८५ ॥

भमर घणा गुंजारव करइं, पदमिणि परिमलि मोह्या फिरइं ।
पदमिणि तणु पटतर एह, भूला भमर न छंडइ देह ॥ ८६ ॥

पदमिणि रूप कही कुण सकइ, इंद्राणी थी अधिकी जकइ ।
रतनसेन परणी पदमिणी, आस संपूरण हुई मन इणी ॥ ८७ ॥

दिन दस पच तिहां सुखि रही, रतनसेन नृप अवसर लही ।
शंघलपति सु शिख्या करइ, विनय वचन मुखि अति उच्चरइ ॥ ८८ ॥

शघलपति साचु भूपाल, आदर अधिक करी सुविसाल ।
रंगरली बहिनडनी बहू, शघल नु पति पूरइ सहू ॥ ८९ ॥

[रतनसेन का पद्मिनी को लेकर स्व-स्थान के प्रति प्रस्थान]

सेन घणी शघलनाथ, रतनसेन नइ हूउ साथि ।
सेना सगली समुद्र मझारि, प्रवहण पूरि करायु पार ॥ ९० ॥

समुद्र परइं पुहचावी करी, शंघलनाथइं शिख्या करी ।
प्रीति रीति पालिउ पडिवनु, च्युंही अधिक वधारिउ विनु ॥ ९१ ॥

शंघलपति पाछा सचरया, रतनसेन डेरइ ऊतरया ।
भाट कला भुंजाई तणा, डेरइ डेरइ दीसइ घणा ॥ ९२ ॥

[चीत्तौड मे रतनसेन की अनुपस्थिति का वर्णन]

वात सुणु हिव ते पाछिली, रतनसेन राजानी भली ।
छानु छिटकिउ भूपति जेह, मरम न जांणइ कोई तेह ॥ ९३ ॥

सांझ हूई नवि दीसइ राइ, सांमी विण किम सभा भराइ ।
वाहरि भीतरि कीधु सोझ, नृपनी कोई न लाभइ खोज ॥ ९४ ॥

माहि जई रांणी वीनवी, तव तिणि वात हती ते चवी ।
सांमि सकइ तु रीसइ घणी, परणेवा चालिउ पदमिणी ॥ ९५ ॥

रतनरांण सुत सकज सनूर, सुभट सभा महि बेठु सूर ।
कपट वात कूडी केलवी, वीरभांण भाखइ नव नवी ।। ९६ ।।

राजा मांहि जपइ (३b) छइ जाप, जिण थी प्रबल वधइ परताप ।
एम कही आघु जोगवइ, भूपतणी परि भुइ भोगवइ ।। ९७ ।।

इम करतां दिन हूआ घणा, संकाणा मन सुभटां तणा ।
नितु नितु बाहरि करतु केलि, नृप हिव महल न दचइ किंम मेलि ।। ९८ ।।

[रतनसेन का चित्तौड लौटना]

कुसल अछइ कइ काई वात, मंत सुति मारिउ होइ तात ।
एहवी वात करइ ते जिसइ, रतनसेन नृप आविउ तिसइ ।। ९९ ।।

च्यारि-सहस हयवर हीसता, बि-सहस गयवर अति गाजता ।
बि-सहस बिहु दिसे पालंखी, त्या माहे तसु बेठी सखी ।। १०० ।।

विचि पालंखी पदमिणी तणी, चिहुं दिसि भमर रह्या रुणझणी ।
ऊपरि कचण कलस अनेक, एक थकी वलि अधकु एक ।। १०१ ।।

सुभट तणा नवि लाभइ पार, गज गरजारव हय हीसार ।
पंच शबद वाजइं वाजित्र, जे सुणतां सवि नासइ शत्र ।। १०२ ।।

इम तसु साथइ सबली सेण, गयणंगणि बहु ऊडई रेण ।
आव्या चित्रकोट तलहटी, हुइ कोलाहल अति कलहटी ।। १०३ ।।

वीरभाण सकाणु मांहि, सुभट सहू धाया असि साहि ।
परदल आविउ जाणी करी, हाटे हलफल हूई खरी ।। १०४ ।।

ततरइ आविउ नृपनु दूत, कागल लेई माहिं पहूत ।
वीरभांण वाची सहु वात, धन्य दिवस मुझ आविउ तात ।। १०५ ।।

विनयवत साम्हउ दोडीउ, कपट तणु पडदु छोडीउ ।
सुभट सहू धाया ससनेह, जोअण आया लोक अछेह ।। १०६ ।।

सकल लोक जई लागा पाइ, कुसल खेम पूछइ नरराइ ।
रतनसेन चडीओ गज गाहि, मह्रा महोछवि आविउ माहि ।। १०७ ।।

हूउ पइसारू पूगी रली, ठोडि ठोडि गूडी ऊछली ।
पदमिणि नारी परणी तणु, जय जयकार हूउ जस घणु ।। १०८ ।।

महल मनोहर दीधु माहि, तिणि ते पदमिणि करइ उछाह ।
बि-सहस पासि रहइं छोकरी, चंचल चपल रूप सुंदरी ॥ १०६ ॥

[रतनसेन और पद्मिनी का स्नेहमय जीवन]

दूहा

हिव पदमणिसु प्रेमरस, सुखि भीलइ ससनेह ।
पंच विषय सुख भोगवइ, गय-गमणी गुण गेह ॥ ११० ॥

वादल महि जिम वीजली, चंचल अति चमकंति ।
महल माहि तिम ते तणु, झलहल तनु झलकंति ॥ १११ ॥

पान प्रहासइ पदमिणी, गलि तंब्रोल गिलति ।
निरमल तनि तंबोल ते, देह माझे दीसंति ॥ ११२ ॥

हस गमणि हेजइं हसइ, वदन कमल विहसति (४a) ।
दतकुली दीसइ जिसी, जाणि कि हीरा पंति ॥ ११३ ॥

प्रेम सपूरण पदमिणी, सांमि घणुं ससनेह ।
विलसइ जे सुख विषयना, कहि कुण जाणइ तेह ॥ ११४ ॥

राति दिवस रूधो रहइ, नरपति पदमिणि पासि ।
भमर तणी परि भूपती, अलुभि रहिउ आवासि ॥ ११५ ॥

चंदन तरवरि जिम चडी, वीटइ नागर वेलि ।
तिम ते कामिणि कंतसु, विलगि रहइ गुणगेलि ॥ ११६ ॥

कवित कथा रस कांम रस, गाह गूढ गुण गोठि ।
पदमिणि प्रीतम रीझिवा, जाणि कि वास्या होठि ॥ ११७ ॥

नारी निरमल नेह रस, सुधा सरोवर सार ।
तास माहि नृप झीलतु, पामि न सक्कइ पार ॥ ११८ ॥

[राघवचेतन व्यास का प्रसंग वर्णन]

चोपई

राजा रमलि करंतु रहइ, इम केताइक दिन निरवहइ ।
सगला लोक वसइं सुखवास, आवासे लागा आवास ॥ ११६ ॥

तिणि पुरि राघवचेतन व्यास, विद्यासुं अधिकु अभ्यास ।
राजा तिणि रीझवीउ घणु, मुहत घणु द्यइ व्यासां तणुं ॥ १२० ॥
राय भवणि नितु प्रति संचरइ, भारत वात वखाणइ करइ ।
अमहलि महलि सदा सचरइ, राजलोक महि हीडइ फिरइ ॥ १२१ ॥
एक दिवस पदमिणि नइ पासि, राजा बेठउ करइ विलास ।
नेह नितबनि चुबन करइ, राजा आलिंगन आचरइ ॥ १२२ ॥
तिणि प्रस्तावइं राघव व्यास, पुंहतु पदमिणि तणइ अवासि ।
ते देखी राजा खुणसीउ, राघव ऊपरि कोप ज कीउ ॥ १२३ ॥
भमह चडावी कीउ त्रिसूल, कोप तणु जे कहीइ मूल ।
राघव पिण मन माहे डरिउ, विण प्रस्तावइं हु सचरिउ ॥ १२४ ॥

श्लोक

द्वद्वालापनभेषजभोजनसमयसमागमे स्त्रीणां ।
अनिवारितोऽपि तिष्ठति, स किल सखे व्यक्तनागरिक. ॥ १ ॥
अनाहूत. प्रविशति अपृष्टो बहु भाषते ।
अदत्तमासनं भेजे स पार्थ पुरुषोऽधमः ॥ २ ॥
अनिवेदितप्रवेशी असदृशभाषी परासनग्राही ।
कायस्पर्शी च नरः क्षणेन विद्वेषतां याति ॥ ३ ॥

चोपई

चतुर तणी ए नही चातुरी, अणतेडिउ आवइ फिरि फिरी ।
वाते गोठि अणरुचंती करइ, काढंतां ई नवि नीसरइ ॥ १२५ ॥
बिहुं जणा विचि त्रीजु थाइ, अमहल माहे आघु जाइ ।
अणबोलायु बोलइ घणु, अणदीधु वलि ल्यइ बेसणु ॥ १२६ ॥
डीलइ डील (४b) लिगाडी घसइ, वात करंतु आपे हसइ ।
मनि जाणइ हु खरू सुजाण, मूरिख जनरा ए अहिनांण ॥ १२७ ॥
एकतइं अस्त्री भरतार, रामति रमतां हुइं अपार ।
कन्हइं जई ऊपाइ काणि, मूरिख जनरा ए अहिनांण ॥ १२८ ॥

इम मनि खुणसिउ राजा घणुं, मान मरोडयु व्यासां तणुं ।
कोधी रोस घणो ते राइ, जिणथी तन धन जीवित जाइ ।। १२९ ।।

विलखु हुइ ऊतरीउ व्यास, नीठ पहूतु निज आवासि ।
सांमि तणी जव थाइ रीस, तव जांणे रूठउ जगदीस ।। १३० ।।

वलता व्यास न तेडचा माहि, मांन मुहतथी मुंक्या ठाहि ।
इणि मुझ दीठी ए पदमिणी, आखि हरावुं हुं ए तणी ।। १३१ ।।

व्यास सुणी इम मनि बीहनु, कुण वेसास करइ सीहनु ।
राजा मित्र कदी नवि होइ, नवि दीठउ नवि सुणीउ कोइ ।। १३२ ।।

काव्यं

काके शौच द्यूतकारेषु सत्य क्लीवे धैर्यं मदद्यपे तत्वचिता ।
सर्पे क्षाति स्त्रीषु कामोपशांती राजा मित्र केन दृष्ट श्रुत वा ।।१।।

अत्यासन्ना विनाशाय, दूरस्था निःफला मता. ।
सेव्या मध्यस्थभावेन, राजावह्निगुरुस्त्रियः ।।२।।

कविरकविः पटुरपटु, सूरो भीरुश्चिरायुरल्पायु
कुलजः कुलेन हीनो भवति नरो नरपतेः कोपात् ।।३।।

इम चिंती राघव मनि डरइ, नृप खुणसांणइ खिण न विसरइ ।
नृपनी खुणसि न होइ भली, नितु २ हाणि हुइ एकली ।। १३३ ।।

[राघव व्यास का चित्रकोट त्याग एव दिल्ली गमन]

इम आलोची राघव व्यास, चित्रकोटनु छाडिउ वास ।
मांणस मुहरइ लेई करी, गढथी छांनु गु नीसरी ।। १३४ ।।

श्लोक

त्यजेदेक कुलस्यार्थे ग्रामस्यार्थे कुलं त्यजेत् ।
ग्राम जनपदस्यार्थे आत्मार्थे पृथिवीं त्यजेत् ।।१।।

जातु जातु डिल्ली गयु, तिहां जाई नइ परगट थयु ।
गांम माहि हूउ परसिद्ध, ज्योतिष निमित घणु जस लीध ।। १३५ ।।

भणइ भणावइ शास्त्र अनेक, वात वखाण करइ सविवेक ।
नवरस सयण सभा रीझवइ, सित सित अरथ करी सीखवइ ।। १३६ ।।

पूरु घटि विद्या परवेस, तेहनई केहा देस विदेस ।
विद्या माता विद्या पिता, विद्या सयण सगा (५a) सासता ।। १३७ ।।

विद्या वित्त तणु भडार, विद्या घाट सोलइ सिणगार ।
मान मुहत जस विद्या थको, वितथो विद्या अधिकी जकी ।। १३८ ।।

श्लोक

कोऽतिभार. समर्थानां, किं दूर व्यवसायिनाम् ।
को विदेशः सुविद्यानां, कः परः प्रियवादिनाम् ।।१।।
विद्या नाम नरस्य रूपमधिक प्रच्छन्नगुप्त धनम् ०।।२।।

[दिल्लीपति अलावदीन बादशाह का वर्णन]

चोपाई

डिल्लीपति पतिसाह प्रचड, अवनि एक तसु आण अखंड ।
अलावदीन नवखडे नाम, नृप सहु तेहनइ करइ सिलाम ।। १३९ ।।
एकछत्र धर सगली धरइ, सुर नर सहु को तिणथी डरइ ।
अवनि तणु अधिकु अभिलाख, लसकर तसु नव त्रिगुणा लाख ।। १४० ।।

[राघव का दिल्लीपति अलाउद्दीन से मिलना]

तिणि ते सुणीउ बभण गुणी, तेडाविउ डिल्लीनइ धणी ।
व्यासि जइ दीधी आसीस, जांणि के वेठो छइ जगदीस ।। १४१ ।।
व्यासि कह्या तस् कवित अनेक, सभा सहित रीझिउ सविवेक ।
आगे ई थो वंभण गुणो, पातिसाहि दी पहिरामणी ।। १४२ ।।
मान मुहत वधीउ पुर माहि, पूछइ तेडी नितु पतिसाह ।
उलगतां तूठउ अवनीस, पूगी राघव तणी जगीस ।। १४३ ।।
वास्या गाम ग्रास दे घणा, राघव चेतन वेही(?) जणा ।
पातिसाह पासइ नितु रहइ, राघव कवित्त कथा नितु कहइ ।। १४४ ।।
इक दिन आविउ ए अभिमान, रतनसेन मुझ मलीउ मांन ।
वालु वयर किसी परि एह, सांमिध्रम नइ दीधु छेह ।। १४५ ।।

तु हु जु पदमिणि अपहरू, चित्रकोटथी अलगु करूं ।
पदमिणि नारि खरी पडवडी, लगि पतिसाह करूं परगडी ॥ १४६ ॥
राघव चितइ अधिक उपाइ, प्रगट वात मुखि न कहइ काइ ।
भाट एकसु भाईपणु, कीधु मान मुहत दे घणु ॥ १४७ ॥
होश्रा माहि आलोची हेत, खोजासुं कीधु संकेत ।
वित्त विहूनां दीधु घणुं, मित्र करी कीधुं मंत्रणु ॥ १४८ ॥
सभा माहि काढेयो घणी, वात किसी परि पदमिणि तणी ।

[सुलतान की सभा में पद्मिनी स्त्री का वर्णन]

अन्न दिवसि वेठउ सुलितांण, मिली सभा सहु रांणो रांण ॥ १४९ ॥
अति सुकमाल पसम पडवडी, कलहंस पंखि तणी पंखडी ।
अति सुंदर करि घरी सभाउ [5b],तव तिणि भाटि दीउ व्रह्माउ ॥ १५० ॥

भाट वाक्यं

एक छत्र जिणी पृथी, घरीउ निश्चल घर ऊपरि ।
आण किति नव खंडि, अदल कीधी दुनि भीतरि ॥
नल विन्नल विझ्झाडि, उदवि कर पाउ पखालीय ।
अतेउर रति रंभ, रूप रभा सुर टालीय ।
हेतमदान कविमल्ल भणि, अमर कित्ति वे वखत गिणि ।
दीठउ न को रवि चक्र तलि, अलावदीन सुलिताण विण ॥ १५१ ॥

चोपई

कवित सुणी रीझिउ सुलितांन, भाट प्रतइं दीधु वहु मान ।
हाथि किसु पूछइ पतिसाह, तव ते भाट भणइ गुणगाह ॥ १५२ ॥

भाट वाक्यं

गाथा

माण सरोवर मज्झे, निवसइं कलहंस पंखीया वहवे ।
ताण चिय सुकमाला, एष सा पखी करे मज्झ ॥ १५३ ॥

चोपई

इम निसुणी जोइ सुलितांन, नव नव मउज महा असमांन ।

सोहइ पसम महा सुकमाल, ते देखी जपइ भूपाल ॥ १५४ ॥
इसी सकोमल काई वली, किण ही वस्त कठे साभली ।
तव भाट भणइ सुविचार, हां सुलिताण कहु अवधारि ॥ १५५ ॥
पदमिणी नारि इसी पातली, अति सुकमाल सकोमल वली ।
एह थकी वलि अधिकी तेह, सुगुण सकोमल नइ ससनेह ॥ १५६ ॥
तव ते भूप भणइ पदमिणी, काई नारि कठे ई सुणी ।
भाट भणइ ए अवसर लही, गोरीपति निसुणइ गहगही ॥ १५७ ॥

भाट वाक्यं

भाट भणइ सुणि भूप, रूप अति रंभ समाणी ।
हइं तुझ हरम हजार, सख कुण लहइ समांणी ॥
ता महि पदमिणि काइ, हुसी तुरकिणि हिंदुआणी ।
अदल आज तू राज, अवर कोइ राउ न रांणी ॥
तुझ महल माहि पदमावती, गिणत नारि होसी घणी ।
सुणि मीनति सुलितांण विण, मइं न काइ बीजी सुणी ॥ १५८ ॥

चोपई

इम निसुणी खोजु खलभलइ, पातिसाह बइठउ सभलइ ।
आसगाइत बोलइ इसुं, तइ रे भाट कहिउ ए किसु ॥ १५९ ॥

खोजा वाक्य

मम भणि भट सुकवित, खुद खोजु दयइ पूरू ।
रे रे सबद-फरोस, सिबद हरमा लगि सूरू ।
कहा सु रे पदमिणी, सेज रायनकी सोहइ ।
सुर नर गण गध्रव्व, पेखि त्रिभवन मन मोहइ ॥
संखिणी सबइ सुलितांण घरि, कोपि हुए बदिण रसइ ।
रे खोजा ला इतमार, सुणि पातिसाह मुलके हसइ ॥ १६० ॥

[राघव व्यास द्वारा पद्मिनी स्त्री का लक्षण वर्णन] [6b]

आगलि बेठउ राघव व्यास, पुस्तक ऊपरि अधिक प्रयास ।
सइं मुखि पूछइ इम सुलिताण, पदमिणि नारि तणा इहनाण ॥ १६१ ॥

पातिसाह वाक्यं

कुडलीउ

आलिम साहि अलावदी, पूछइ व्यास प्रभाति ।
रतनपरीक्षा तुम्हि करु, त्री की केती जाति ।
त्री की केती जाति, कहइ राघव सुविचारी ।
रूपवत पतिव्रता, प्रिया सो होइ पियारी ।
हस्तिणि कि चित्रिणि संखिणी, पुहवि वडी पदमावती ।
इम भणई विप्र साचु वचन, आलिम साहि अलावदी ।। १६२ ।।

अथ पदमिनी लक्षण

रूपवत रति रंभ, कमल जिम काय सुकोमल ।
परिमल पुहप सुगंध, भमर बहु भमइं वलावल ।
चपकली जिम चंग, रंग गति गयद समांणी ।
सिसिवयणी सुकमाल, मधुर मुखि जंपइ वांणी ।
चंचल चपल चकोर जिम, नयण कंति सोहइ घणी ।
कहि राघव सुलिताण सुणि, पुहवि इसी हुई पदमिणी ।। १६३ ।।
कुचयुग कठिन कठोर, रूपि अति रूडी रांमा ।
हसित वदन हित हेज, सेज नितु रहइ सकांमा ।
रूसइ तूसइ रंगि, संगि सुख अधिक उपावइ ।
रागरग छत्रीस गीत, सुर गांन सुणावइ ।
स्नान मांन तबोल रस, रहइं अहोनिसि रागिणी ।
कहि राघव सुलितांण सुणि, पुहवि इसी हुई पदमिणी ।। १६४ ।।
बीज जेम झबकति, कति कुंदण ज्युं सोहइ ।
सुर नर गण गध्रव्व, पेषि त्रिभवन मन मोहइ ।
त्रिवली तलि तनु लक, वंक नहु वयण पयपइ ।
पतिसुं प्रेम सनेह, अवरसुं जोह न जपइ ।
सामिभगत ससनेहला, अति सुकमाल सुहामणी ।
कहि राघव सुलिताण सुणि, पुहवि इसी हुइ पदमिणी ।। १६५ ।।
धवल कुसम सिणगार, धवल बहु वसत्र सुहावइ ।
मोताहल मणि रयण, हार हृदयस्थलि भावइ ।
अलप भूष त्रिसि अलप, नयणि बहु नीद्र न आवइ ।

आसणि अंग सुरंग, जुगति सुं कांम जगावइ ।
भगति जुगति भरतार सु, करइ अहोनिसी कांमिणी ।
कहि राघव सुलितांण सुणि, पुहवि इसी हुइ पदमिणी ॥ १६६ ॥

अथ श्लोकाः

पद्मिनी पद्मगंधा च, पुष्पगधा च चित्रिणी ।
हस्तिनी मद्यगंधा च, मत्स्यगंधा च सुंखिणी ॥ १६७ ॥
पद्मिनी स्वामिभक्ता च, पुत्रभक्ता च (६b) चित्रिणी ।
हस्तिनी आत्मभक्ता च, कलहभक्ता च सुंखिणी ॥ १६८ ॥
पद्मिनी करलकेशा च, तरलकेशा च चित्रिणी ।
हस्तिनी ऊर्द्धकेशा च, बरड़केशा च सुंखिणी ॥ १६९ ॥
पद्मिनी सूर्यवदनी, चद्रवदनी च चित्रिणी ।
हस्तिनी कमलवदनी, काकवदनी च सुंखिणी ॥ १७० ॥
पद्मिनी मधुरवांणी च, कोकिलावांणी चित्रिणी ।
हस्तिनी हस्तिवांणी च, काकवांणी च सुंखिणी ॥ १७१ ॥
पद्मिनी श्वेतशृंगारा, रक्तशृंगारा चित्रिणी ।
हस्तिनी मत्तशृंगारा, कुंठशृंगारा सुंखिणी ॥ १७२ ॥
पद्मिनी पान राचति, चित्त राचति चित्रिणी ।
हस्तिनी दान राचति, कलह राचति सुंखिणी ॥ १७३ ॥
पद्मिनी पुहर-निद्रा च, बि-पुहर-निद्रा चित्रिणी ।
हस्तिनी त्रि-पुहर-निद्रा, अघोर-निद्रा च सुंखिणी ॥ १७४ ॥

[बादशाह द्वारा राघव व्यास को हरम मे पद्मिनी स्त्री का पता लगाने का आदेश देना]

चोपई

इणि परि पदमिणिना अहिनाण, निसुणी हरख धरइ सुलितांण ।
अम्ह घरि हरम परीक्षा करु, पदमिणी हुइ ते जूदी धरु ॥ १७५ ॥
व्यास भणइ सभलि सुलिताण, तु मुझ साहिब सुगुण सुजांण ।
हुं तुझ हरम निरखु नही, विण निरख्या क्युं परखु सही ॥ १७६ ॥

म कहसि वात निहालण तणी, तव ते जंपइ डिल्ली-धणी ।
साहि कहइ सभलि हो व्यास, मणिमय एक करु आवास ।। १७७ ।।
तिण माहे तेहना प्रतिबिंब, निरखी परख करु अविलंव ।

[राघव का हरम मे पद्मिनी स्त्री का परीक्षण करना]

सामगरी सहु मेली करी, राघव माहे आणिउ घरी ।। १७८ ।।
मणिमय मडप माहे व्यास, परखइ हरम तणु परगास ।
हस्तिणि चित्रिणि नइ सुंखिणी, निरखी नारि,न का पदमिणी ।। १७९ ।।

कवित्तं

रयण महलि अल्लावदी साहि, राघव हक्कारी ।
नगणि नारि निरखेवि, परखि अव हरम हमांरी ।।
हंसगमणि हसि चली नारि, निरमल मयमत्ती ।
सुर नर गण गध्रव्व, पेखि भूले अनिरुत्ती ।।
अइसी सवे अतेउरी, पभणि व्यास पेखी घणी ।
हस्तिणि चित्रिणि के सुंखिणी, नही साहि घरि पदमिणी ।। १८० ।।

[पद्मिनी स्त्री प्राप्त करने की वादशाहा की उत्कंठा]

चोपई

इम निसुणी पभणइ पतिसाह, विण पदमिणि केहु उछाह ।
पतिसाही पदमिणी विण किसी, पदमिणि नारि हीया महि वसी ।। १८१ ।।
तु हु जु परणुं पदमिणी, केथी कीजइ ए कामिणी ।
हस्तिणि चित्रिणि नइ सुखिणी, घरि घरि नारि लहीजइ घणी ।। १८२ ।।
विण पदमिणि(७ a)नवि पोढुं सेज, विण पदमिणि न हसु हित हेज ।
विण पदमिणि न करुं सुख संग, विण पदमिणि न रमु रतिरग ।। १८३ ।।
चमकइ चित महि नितु पदमिणी, वलतु जंपइ डिल्लीधणी ।
कहि राघव किहां छइ पदमिणी, जेह नइ हुइ ते आणु हणी ।। १८४ ।।
ठावी ठोड वतासु तेह, जिम जइ ल्यावु पदमिणि गेह ।

[राघव व्यास द्वारा सिहल द्वीप मे पद्मिनी स्त्री का पता बताना]

वलतु व्यास पयपइ एम, पदमिणि नारि लहीजइ केम ।। १८५ ।।
सघल दीपि अछइ पदमिणी, दक्षिण दिसि विचि धरती घणी ।
आडु आवइ उदधि अथाग, तिणि तेहनु कोइ न लहइ माग ।। १८६ ।।
साहि भणइ संभलि मुझ वात, मो आगलि सघल कुण मात ।
सरग पताल समेतु खणी, काढुं नारि जई पदमिणी ।। १८७ ।।

[पद्मिनी स्त्री के लिए अलाउद्दीन की सिंहल द्वीप पर चढाई]

सघल ऊपरि चडीउ साहि, कोपाटोप कीउ पतिसाहि ।
पदमिणि सु मनि अति अभिलाख, लसकर लारि सतावीस लाख ।। १८८ ।।
असि चडि चालिउ आलिम जिसइ, दह दिसि देस संकाणा तिसइ ।
गयणंगणि बहु ऊडइ रेण, सूर न सिसिहर सूझइ तेण ।। १८९ ।।
सेसनाग सहिं न सकइ भार, आलिम चालिउ हुइ असवार ।
घन जिम गाजइं गयवर घणा, पार न लाभइ सुभटां तणा ।। १९० ।।

कवित्तं

असपति कीउ आरंभ, चडवि चंचल दक्षण धर ।
पातिसाहि कोपीउ, कवण छूटइ सघल नर ।
दल गोरी पतिसाहि, जुडीउ सग्राम सुहड भड ।
नवलख त्रिगुण तुरग, सहस सोलह मयगल घड ।
सूरिज्ज खेह लोपवि गई, पायालइं वासुगि दुडिउ ।
चिहु चक्कराइ ससय पड्या पातिसाहि किसु परि चडिउ ।। १९१ ।।

[अलाउद्दीन का सेना को समुद्र पार करने का आदेश]

चोपई

आलिमसाहि कीउ इलिगार, साथइ सबला जोध जूझार ।
अखलित गति उलघी मही, समुद्र समीपइ आव्या वही ।। १९२ ।।
रण-रसीउ नइ अति रंढाल, आलिमसाहि करइ धख चाल ।
बूरी समुद्र करू थलखड, संघलदीप करूं सितखड ।। १९३ ।।

पकड़ु संघलपति जोवतु, पदमिणि आणुं तु हुं हतु ।
एम कही ऊतरीउ साहि, लसकर दीधु ले जल माहि ।। १९४ ।।

छडे पयाणे जाउ छंडि, सघलदीप करु सितखड ।
एम हुकम आलिमनु हूउ, लसकर बूडी माहे मूउ ।। १९५ ।।

आलिम नइ अति चडीउ कोप, कोप तणु कीधु आटोप(७b) ।
प्रवहण नाव घडाव्या नवा, चडीया जोध वली जूझिवा ।। १९६ ।।

लाख लाख एकीकु लहइ, रण-रसीउ कुण वांसइ रहइ ।
आगलि एम कहइ वलि धणी, ए वेला छइं सुभटा तणी ।। १९६ ।।

लंडी भिडी संघल भेलयो, माहि जई माझी झेलयो ।
चाल्या जोध घणा जूझार, पांणी माहि कीउ पइसार ।। १९७ ।।

आगलि कहर भमइ भमरीउ, जाणि कि संघलि सुर समरीउ ।
ते माहे प्रवहण गा जिसइ, खंडोखड हूआ सहु तिसइ ।। १९८ ।।

फरीआदे लागी फरीआदि, ऊगारू आलिम अवलादि ।
दरीउ दूठ महा दुरदंत, उदधि तणु नवि लाभइ अंत ।। १९९ ।।

वड वड सुभट रह्या जल माहि, अंबुधि न सकइ को अवगाहि ।
पदमिणि नारि पडउ पातालि, आलिम ए तुम्ह छडु आलि ।। २०० ।।

वलतु आलिम इणि परि कहइ, मो आगलि क्यु दरीउ रहइ ।
सुभट मूआ ते गई बलाइ, अवर घणेरा आणु जाइ ।। २०१ ।।

वरस सहस इक रहिस्युं इहा, विण पदमिणि किम जाउं तिहां ।
असिपति कीधु वलि आरंभ, तेडया सुभट घणा सारभ ।। २०२ ।।

सुभट सहू संकाणा हीइ, फोकट दरीआ माहे दीइ ।
काम काज नवि सीझइ कोइ, हठीउ आलिम न रहइ तोइ ।। २०३ ।।

आलिम मनि अति अमरस घणु, पार न पामइ दरीआ तणु ।
खाण पीण निद्रा परिहरी, असिपति मनि हूई चिंता खरी ।। २०४ ।।

कवित्तं

कोपि चडिउ सुलितांण, खांण अर पांन न भावइ ।
ला इतमार जनारदार, पदमिणि दिखलावइ ।

करि सिलांम बहु दुवाहि, खोदि वन जोइ सु परि।
सघल दीपि समुद्र, अछइ पदमिनी घरि-घरि।
हुसीयार हू अरदास सुणि, एक अद्ध पेखां जहां।
पेखवि समुद्र सांसइ पडिउ, कुण खुदाइ खूते कहां ॥ २०५ ॥

पुनः कवित्तं

राघव चेतन व्यास*.........॥२०६॥

[समुद्र पार करने मे सेना को परेशानी]

चोपई

सुभट घणा सज कीधा वली, नावइं नाव घणी सांकली।
इणि परि आलिम ऊभु कहइ, लाख तुरी जाइ ते लहइ ॥ २०७ ॥
संघल भेलइ जे उंबराउ, बिवणु तेहनइ करूं पसाउ।
माहि जई जे माझी हणइ, त्रिगुण पसाउ करूं तेहनइ ॥ २०८ ॥
पेसी आणइ जे पदमिणी, धर बहुलीनु हुइ ते धणी।
लालच लोभ दिखाडइ घणा, मन्न मनावइ सुभटां तणा ॥ २०९ ॥
पदमिणिनु अधिकु अभिलाष, सज्ज कीया सुभटां नव लाख।
सुभट सहू मनि शका करइं, आलिमथी व(८)लि अधिका डरइं॥२१०॥
वाघ अनइ दोतडिनु न्याइ, लसकरी आंनइ पुहतु आइ।
जिणि परि तिणि परि मरिवु सही,सुभट सहू आव्या सामही ॥ २११ ॥

[सेना का राघव व्यास से परामर्श और राघव का सुझाव]

सुभटे छानु तेडयो व्यास, रे पापी तइं घालिउ पास।
कुमति किसी तइ दीधी एह, सुभट सहूनु कीधु छेह ॥ २१२ ॥
हिव तइ कोई हुसी उपाइ, जिणथी आलिम निज घरि जाइ।
व्यास कहइ निसुणु वीनती, सहूइ सुभट हुवु इकमती ॥ २१३ ॥

---

* यहां 'राघव चेतन व्यास' का कवित्त होना चाहिए था, जो नहीं दिया गया है; केवल पद्यांक ६ (२०६) दिया गया है।

हिकमति हेक हलावां नवी, व्यासइं साची मति सीखवी ।
सहस एक साकतिसुं तुरी, आधा आणु गज पाखरी ॥ २१४ ॥
पहिरावु सोवन सिणगार, कोडि एक आणु दीणार ।
नाव भरावु बहु नव नवी, पट्टकूल बहु ऊपरि ठवी ॥ २१५ ॥
कचण कलस घणा सिरि ठवु, अणदीठा नर इम सीखवु ।
सघलपति मेल्हिउ छइ डंड, आलिम इवकइ मुझनइ छंडि ॥ २१६ ॥
नाकनमणि मइं कीधी एह, हु छुं तुम्हना पगनी खेह ।
एम कही राखु अभिमांन, जिम बाहुडि जाइ सुलितांन ॥ २१७ ॥
अवर उपाइ न दीसइ कोइ, हरखित सुभट हूआ सहु कोइ ।
रातोराति कीया परपंच, छांना मेल्या सगला संच ॥ २१८ ॥
आलिमसाहि न जाणइ वात, आविउ डड हूउ परभात ।
जागिउ आलिम जगतीधणी, मन माहे थी चिंता घणी ॥ २१९ ॥
आगलि आविउ बाहिरि जिसइ, जलधि माहि ते दीठा तिसइ ।
साहिब कहइ किसुं छइ एह, तव ते व्यास कहइ ससनेह ॥ २२० ॥
सांमि सकहइ तु संघल तणी, परिघल आवी पहिरामणी ।
झलकइं तोरण चूनी चग, ऊपरि कंचण कलस उतंग ॥ २२१ ॥
फरहर नेजा धज फरहरइं, उदधि माहि आवइं इणि परइं ।
आलिम मनि हूउ आणंद, देखी प्रवहण वाहण वृंद ॥ २२२ ॥
ते पिण आव्या बाहरि तरी, साकति सगली आगलि करी ।
असि नांखी नइ आव्या धाइ, पातिसाहि नइ लागा पाइ ॥ २२३ ॥
डंडडोर हय हाथी घणा, सेवक आव्या संघल तणा ।
विनय करी भाषई वीनती, तु मोटु छइ डिल्लीपती ॥ २२४ ॥
संघलपति तुम्ह पगनी खेह, तिणि महिमांनी मेल्ही एह ।
ए चूनु होसी तुम्ह पानि, मया करी हिवकइ दिउ मांन ॥ २२५ ॥
तु मोटु जाणे जगदीस, नमतांसुं हिव न करु रीस ।
विनय वचनि राजा रीझीउ, संघलपति (८b)नां सिरिपाउ दीउ ॥ २२५ ॥

पहिराव्या सगला परधांन, मोटांनी परि दीधुं मांन ।
संघलपति युं जे मेल्हीउ, ते सुभटानां विहची दीउ ॥ २२६ ॥
मांन मुहतसु मेल्ह्या तेह, संघलपतिसु कीउ सनेह ।
व्यास तणी सहु समरी वात, मेली धीगडि धातइ धात ॥ २२७ ॥

[अलाउद्दीन का सिंहल से वापस लौटना और दिल्ली पहुचना]

कूच कीउ असिपति ततकाल, आविउ डिल्ली पुरि ततकाल ।
ठोडि ठोडि गूडी ऊछली, गोखि गोखि बहु नारी मिली ॥ २२८ ॥

कवित्तं

मिलीया मीर मलिक, साहिजादा हिंदू सहि ।
कहा सु रे पदमिणी, खारि खाधु लसकर सहि ।
राघव जंपइ इसु, कहिउ हमारु कीजइ ।
आणु माल बहुत, साहि पाछउ वालीजइ ।
आ अछइ लाछि अरदास, सुणि असिपति डड भराईउ ।
सुरिताण तांम समझाइ करि, बाहुडि डिल्ली आईउ ॥ २२९ ॥

चोपई

असिपति आविउ निज पुरि जिसइ, ठोडि ठोडि नर भाषइ तिसइ ।
पदमिणि नारि पखे पतिसाह, किम आविउ विण कीइ वीवाह ॥ २३० ॥
आलिमसाहि हतु आकरु, पिण हिव सरल हूउ पाधरु ।
विण परणी आविउ पदमिणी, ठोडि ठोडि भाषइ कांमिणी ॥ २३१ ॥
आलिम आविउ निज आवासि, लेइ शस्त्र माहि गयु खवास ।
माहि मेल्हि ते वलीउ जिसइ, बडकणि बीबी बोलइ तिसइ ॥ २३२ ॥
पातिसाहि परणी पदमिणी, ते दिखलावु अब हम भणी ।
जात्र करा जोवा दीदार, निजरि निहालां हम इक वार ॥ २३३ ॥
जसु घरि पदमिणि नही हुइ च्यारि, सगलु सूनु तसु ससार ।
तेह तणी सुलताणी किसी, जेहसु पदमिणि न रमइ हसी ॥ २३४ ॥

पातिसाह हिव पदमिणि पखे, ठालु आयु हुइ घरि रखे ।
बीबी विलखु कीउ खवास, आवी पुहतु आलिम पासि ॥ २३५ ॥

वात सहू सविसेपी कही, असिपति रीस हीया महि ग्रही ।
आलिम मडिउ अविक अभ्यास, ततखिण तेडिउ वलि ते व्यास ॥ २३६ ॥

सघलदीप पखे पदमिणी, वले किहां छइ कहि मुझ भणी ।

[राघव व्यास का चित्तौड की पद्मिनी का पता वताना और
अलाउद्दीन का चित्तौड़ पर चढ़ जाना]

व्यास कहइ सभलि सुलितांण, इक वलि पदमिणिनु अहिठांण ॥ २३७ ॥

चिहु दिसि चावु गढ चीतोड, (९२)वीझाचल महि विसमइ ठोडि ।
रतनसेन राजा रंढाल, कलह करूर महा कथाल ॥ २३८ ॥

तसु घरि नारि अछइ पदमिणी, सेपनाग सिरि जिम हुइ मणी ।
लेई न सकइ कोई तेह, तिणि करणि शु भाखुं एह ॥ २३९ ॥

साहि कहइ संभलि हो बंभ, एवडु फोकट कीउ आरंभ ।
बीजी वात सहू हिव तिजु, गढ चीतोड तणु शु गजु ॥ २४० ॥

ऊभाऊभि लीउ पदमिणी, जीवंत पकडुं गढनु धणी ।
सवल सेन ले आलिम चडिउ, धर धूजी वासिग धडहडिउ ॥ २४१ ॥

कवित्त

सलहदार हथीयार, लेइ आगलि अदंधारी ।
सभाली सर सेल, माहि भेजी भंडारी ।
बीबी तव पूछीउ, कहां पदमिणि तुम्हो आंणी ।
च्यारि पंच नही पदमिणी, किसी तिसकी सुलितांणी ।
तेडावि व्यास ततखिणहि, पूछइ वात विगति वहु ।
सघलां टालि जिणि ठांणि हइ, कहा राघव पदमिणि कहु ॥ २४२ ॥
हसि बोलइ सुलितांण, कहां राघव पदमिणि कहु ।
रतनसेन गढ चित्रकोट, गहिलोत राइ पहु ।
पलांणीया अलावदी, जल थल अकुलांणइ ।
स्रगि इंद्र खलभलिउ, पडचा दह देस भगाणइ ।

फणिवइ पयालि वासुगि दुडिउ, कहइ साहि विग्रह करू ।
मारू सदेस हिंदूआण कु, एक एक जीवित घरू ॥२४३॥

[चित्तौड में युद्ध के आरम्भ का वर्णन]

चोपई

गढ चीतोड तणी तलहटी, आविउ असिपति इणि परि हठी ।
लाख सतावीस लसकर लार, हथीयारे लागा हथीयार ॥ २४४ ॥

मयगल सबल करइं सारसी, हय हीसारव भट पारसी ।
आतसबाजी अधिक अगाज, गोला नालि रह्या बहु गाजि ॥ २४५ ॥

दह दिसि मंड्या बहु दुमदमा, सुभट सहू दीसइं सूरमा ।
ढलकइं चिहुं दिसि बहु ढीकुली, न सकइ को पइसी नीकली ॥ २४६ ॥

दुमकि दुदामा घूमइं घणा, वाजइं ढोल घणा सांघिणा ।
भभकइ भुंगल भेरी भूर, रणकइं रोस भरचा रणतूर ॥ २४७ ॥

हुइ सरणाई, सिंधू, साद, परबत माहिं पडइं पडसाद ।
हठीउ आलिमसाहिं अभंग, जुद्ध तणा करि जांणइं जग ॥ २४८ ॥

रतनसेन पिण रोसइं चडिउ, दीठउ आलिम (६६) आवी पडिउ ।
सुभट सेन सज कीधी सहू, बलवत बोलइ बहसे बहू ॥ २४९ ॥

साहि भलइ तु आविउ सही, पिणि हिव नासि म जाए वही ।
नासंता छइ नरनइं खोडि, हुं ठावु छु इणहि जि ठोडि ॥ २५० ॥

हिवइ दिखाडिसु माहरा हाथ, तुं पिण सज्ज करे निज साथ ।
ढीलीपति मत ढीलु रहइ, सुभट तिकौं जे पहिली कहइ ॥ २५१ ॥

तु संघलथी आविउ नासि, तिणि कारणि तोनइं शाबासि ।
तोनइं छइ नासणनी टेव, दीठइं मुंहिम त नासइ हेव ॥ २५२ ॥

कीधु कोट सजे साबतु, फिरतां दीसइ अति फाबतु ।
पोलि जडावी पेठा माहि, सुभट घणा साह्या गजगाह ॥ २५३ ॥

गढरोहु मडाणु घणु, तिम तिम कोप वधइ बिहुं तणु ।
बेही बलवत बेही दूठ, पूरू परिगह बिहुंनी पूठि ॥ २५४ ॥

जे भाजइ ते लाजइ घणुं, कुल अजूआलइं वे आपणु ।
गोला नालि वहइ ढीकली, वाहरि को न सकइ नीकली ॥ २५५ ॥
गोफणि गयणि वहइ अति घणी, रीठ पडई अति रोढां तणी ।
कुहक वाण करडाटा करइं, लसकर लंघी जाइं परइं ॥ २५६ ॥
वांण विछूटइं त्रूटइ तणी, फूटइं फोज चिहु दिसि घणी ।
जूझइं वूझइं सगली कला, भुरजि भुरजि भड ऊछांछला ॥ २५७ ॥
झाडइ झडा पाडइ पाघ, ऊडाडइं धज गयणि अथाग ।
ताकइ हाकइ वाहइ तीर, मारइ मयगल मुगल मीर ॥ २५८ ॥
फाडइ डेरा हेरा करी, न सकइ को पेसी नीसरी ।
कलली कोप करइं कंघाल, फारक मारि करइं द्यई फाल ॥ २५९ ॥
कोट तणा सगला कांगुरा, वीटी वइसइ जिम वानरा ।
वालइ वाधी कवड़ी हणइ, मरण तणु भय मनि नवि गिणइं ॥ २६० ॥
रतनसेन वासइ राजांन, पूरइ पाणी नइ पकवान ।

[युद्ध की विषम स्थिति से बादशाह का चिन्तित होना]

जूझइं सुभट सनेहां सहू, आलिम मनि हूई चिंता वहू ॥ २६१ ॥
आलिमसाहि कहइ सांभलु, सुभट सहू को भेला मिलु ।
गढ ऊपाडु द्यु सोधडा, पाडु भुरज विहडुं घडा ॥ २६२ ॥
सबल सुरंग दीउ गढ हेठि, देखी न सकइ जिम को द्रेठि ।
कोट तणा ढाहु कगुरा, पाडु खांणि धकावु धरा ॥ २६३ ॥
आसि पासि पइसारू करू, कासुं मरणथकी मनि डरू ।
लांवी ले नीसरणी ठवु, एकीकु रोढु खेसवु ॥ २६४ ॥
लाख लाख ल्यु रोढा तणु, गढ ऊपाडि करु आंगणु ।
सुभट सहू को धाया धसी, आलिमसाहि हूउ मनि खुसी ॥ २६५ ॥
रणरसीउ जोइ रमि राह, हलकारइ पूठइं पतिसाह ।
ढीलीपति ढोउ मंडीउ, पिण नवि कोट चिनी खंडीउ ॥ २६६ ॥
सांझ लगइ हूउ संग्राम, पिण नवि सीधु कोई काम ।
घणा मराव्या मुंगल मीर, असिपति (१०२) मांनी हीइ हीर ॥ २६७ ॥

आलिमसाहि करइ आलोच, लसकर माहि हूउ संकोच ।

[सैन्य-सहार से बादशाह का चिन्तित होना और राघव व्यास द्वारा छल-भेद का उपाय सुझाना]

व्यास कहइ सभलि सुलिताण, कोट न लीजइ किम ई प्रांण ।। २६८ ।।
छानु कोइ करु छल भेद, मत परगासु मरम मजेद ।
वात करावु कपटइ इसी, साहि हूउ हिव तुम्हसुं खुसी ।। २६९ ।।
बोलबध दिउ मागइ तिके, करु सुगद करावइ जिके ।
विचलइ नही हमारी वाच, एम कही ऊपाउ साच ।। २७० ।।
मुकु महि पाका परधांन, इम कहवाडु दिउ हम मान ।
तेडी माहि खवाडु खांण, द्रेठि दिखाडु तुम्ह अहिठाण ।। २७१ ।।
पदमिणि हाथइ जीमण तणी, मुझ मनि खति अछइ अति घणी ।
अवर न काई मांगइ साहि, अलप सेन सु आवइ माहि ।। २७२ ।।
एक वार देखी पदमिणी, साहि सिधावइ ढीली भणी ।

[शाही प्रधानो का राजा रतनसेन से मिलना]

एम कही मुक्या परधान, रतनसेन पूछ्या दे मांन ।। २७३ ।।
कहु किम आव्या तुम्हि परधांन, तव ते बोलइ सुणि राजान ।
आलिमसाहि कहइ छइ एम, माहोमाहि करु हिव प्रेम ।। २७४ ।।
बोलबंधु द्यु साचा सही, विचलइ वाच हमांरी नही ।
नाकनमणि करि कोट दिखाडि, पदमिणि हाथइ मुझ जीमाडि ।। २७५ ।।
पदमिणि नारि निहालण तणु, मुझ मनि हरख अति घणु ।
अवर न काई मागइ आथि, जीमे जाउ पदमिणि हाथि ।।
माहोमाहि करू सतोष, राखु हिव ए वधतु रोष ।। २७६ ।।

कवित्तं

वांकु गढ चीतोड, सकति सुरतांण न लीजइ ।
ऊठाईइ मुसाफ बोलि, ज्युं राउ पतीजइ ।
दड द्रव्य नहू लीउ, देस परदल नवि गाहु ।
नही हम गढ की चाउ, राउकुमरी न विव्याहु ।

अलावदीन सुरताण कहि, राज माहि नवि आहुडुं।
राउ रतनसेन मुझकुं मिलइ, नाकनमणि करि बाहुडुं ॥ २७७ ॥

प्रधान वाक्यं

हम सु साहि परठव्या, करणकुं वातां भल्ली।
जइ तुम्हि मानु वात, सहि वहि जाइ डिल्ली।
करि पदमावति दृष्टि, फेरि चीतोड जि देखुं।
विग्रह कोइ नवि करूं, बांह दे सब ही रखुं।
गलि लाइ कठ पहिराइ करि, बहुत मया आलिम करइ।
राउ रतनसेन सुणि वीनती, पुहर माहि दूतर तरइ ॥ २७८ ॥

*[कीउ उपंग सुलिताण, मत्र एइ सु उपाई।
मुझकुं गढ दिखलाउ, आप जनमंतर भाई।
हुं कृत कम्मज जम्म, सुतु असुरां घर पामो।
तु पूरव पुन्य प्रमाण, हूउ चित्रकोटह स्वामी।
दोइ काइ अछइ इक आतमा आवि जम्म मेलु थयु।
खीमकरण भुज मंत्र सुं, राजा वयण ति मन्नयु ॥] २७९ ॥

[बादशाह के प्रधानों को राजा रतनसेन का उत्तर]

चोपई

रतनसेन कहि सुणि परधांन, वातां करतां वाधइ वांन।
पिणि जु प्रांण ढ़िखाडइ भूप, तु नवि कोइ रहइ रस रूप ॥ २८० ॥

वात करइ जु आलिमसाह, तु हम मिलवा घणु उछाह।
असपति आवइ अंगणि वही, प्रापति विण क्युं पामां सही ॥ २८१ ॥

बोलवंध द्यइ साचा साहि, अलप सेन सुं आवई माहि।
अम्ह घरि आइ अरोगु धांन, साहोमाहि वधइ ज्युं मांन (१०b) ॥ २८२ ॥

परधांने पूछिउ पतिसाह, वात वणे दीधी निज बाह।
आलिम सुंस करइ सहि जूठ, मुंहि मीठो मन माहे दूठ ॥ २८३ ॥

---

* यह पद्य लेखक ने पीछे से अपनी हस्तलिखित प्रति मे समाविष्ट करने के विचार से पत्र के बाए हाशिये पर स० ७८ के बाद ७९वें पद्य के रूप मे लिखा। इसके अन्त में 'ओळी ३' लिख कर सकेत किया है कि पन्ने की नीचे से ऊपर की ओर तीसरी पक्ति मे इसे जोड़ा जाय। छपी हुई पुस्तक मे इस पद्य का क्रम २७६वा है।

[राघव व्यास की प्रपंची मन्त्रणा और बादशाह का गढ में लश्कर सहित प्रवेश]

राघव व्यासि कीउं मंत्रणु, रतनसेन नृप झेलण तणुं।
नृप मनि कोइ नही छल-भेद, खुरसांणी मनि अधिकु खेद ॥ २८४ ॥

ऊघाड़े मेल्ही गढ पोलि, मिलिया मांणस टोला-टोलि।
आलिम साथि लिया असवार, लोहइ लुंब्या त्रीस हजार ॥ २८५ ॥

कवित्त

*[गढइं चडच्यु सुलिताण, नालि उबरां खवासां।
भमर एक भूलिग, चद ज्युं भयु उजासां।
ए चंदा खाइक्क, दान उर मान समगल।
एक चंद चंदणुं, सेज सोहइ रायांघर।
हुजदार सबे हाजरि खडे, गिरि पदमणि पाउद्धरइ।
अलावदीन सुलिताण सुणि, आलिम सिरिं छत्रां धरइ ॥]

चोपई

व्यास सहित साथइं ततकाल, माहे पेठा सहु समकाल।
कला इसी का कीधी सोइ, पइसु तु नवि दीठउ कोइ ॥ २८६ ॥

आवी माहि हूआ एकठा, तब सगला दीठा सांमठा।
रतनसेन मनि खुणसिउ सही, आलिम आविउ अंगणि वही ॥ २८७ ॥

नृप पिण सेना सगली सार, असवारे मेल्ह्या असवार।
तुगे तुग मिल्या एकटा, जांणि कि दीसइ वादल-घटा ॥ २८८ ॥

आलिम पिण न सकइ आंगमी, न सकइ नृप पिण आलिम गमी।
आलिमसाहि कहइ सुणि भूप, कांइ तुम्ह मेलु कटक सरूप ॥ २८९ ॥

हु इहा विढवा आविउ नही, गढ जोएनइ जाइसु सही।
म धरु मन महि खोटु खेद, मुझ मनि कोइ नहीं छलछेद ॥ २९० ॥

नृप जपइ आलिम अवधारि, कटक कोइ मेलु न लिगार।
जइ तुम्ह वचन हूउ हिव इसु, कटक करी नइ करिवुं किसुं ॥ २९१ ॥

---

* यह पद्य भी लेखक ने अपनी मूल प्रति में पहले नहीं लिखा था, बाद मे यह पद कहीं से मिलने पर इसको स० ८३ (२८३) के आगे समाविष्ट करने के लिए काकपद लगा कर सकेत करते हुए वाम पार्श्व में लिख दिया है। छपी हुई प्रति में इसकी क्रम स० २८६ है।

पिण तइ आण्या त्रीस हजार, किणि कारणि एवडा असवार ।
तुझ मनि काइ सही छइ वात, धूतपणारी दीसइ घात ॥ २६२ ॥

आलिम जंपइ नृप अवधारि, प्रांहुणडां नइ इम म पचारि ।
थोडा व्हो अथवा व्हो घणा, झेली लीजइ निज प्रांहुणा ॥ २६३ ॥

धांन तणु छइ आज सुगाल, घणा घणा कांइ कहु भूआल ।
अम्हि आव्या था जिमवा सही, विढवा कारणि आव्या नही ॥ २६४ ॥

जीमणरु जाणु संकोच, खरच करंता आवइ खोच ।
तु वलि पाछा मेल्हां एह, जिम भाखु तिम राखां रेह ॥ २६५ ॥

[राजा रतनसेन द्वारा बादशाह का स्वागत और भोजन समारम्भ]

भूप भणइ सभलि पतिसाह, भलइ पधारया आलिमसाह ।
वलि तेडावु जांणु जिके, पिण लघु बोल न बोलु वके ॥ २६६ ॥

परिघल पांणी परिघल धान, परिघल घोल घणा पकवांन ।
जीमु भोजन भावइ जिके, पिण लघु बोल न बोलु वके ॥ २६७ ॥

बोलि बोलि बे हूआ खुसी, हाथे ताली दीधी हसी ।
माहोमाहि हूउ संतोष, टलीया सगला मननां दोष ॥ २६८ ॥

रतनसेन हिव निज घर धणी, भगति करावइ भोजन तणी ।
पदमिणि नारि प्रतइं जई कहइ, आलिम सु हिव जिम रस रहइ ॥ २६९ ॥

तिण परि भोजन भगतइ करु, जिम आलिम मनि हरपइ खरु ।
पदमिणि नारि कहइ प्री सुणु, निज करि न करिसु हु प्रीसणु ॥ ३०० ॥

षटरस सरस करु रसवती, प्रीसेसी दासी गुणवती ।
सिणगारु सगली छोकरी, खांति अछइ जु तुम्ह मनि खरी ॥ ३०१ ॥

बि सहस दासी रूपनिधान, पदमिणि पासि रहइ सुविधांन ।
रूप अनोपम रंभा (११a) जिसी, काम तणी सेना हुइ तिसी ॥ ३०२ ॥

आसण बेसण सगला तेह, करसी कांम सहू ससनेह ।
सगली साकति करि सावती, मांहि तेडाविउ डिल्लीपती ॥ ३०३ ॥

परिघल परठा दीसइ घणा, जाणि विमान अछइ सुरतणा ।
ठोडि ठोडि दीसइं पूतली, घालइ वाउ चिहुं दिसि वली ॥ ३०४ ॥
अनुपम रतनजडित आवास, अगर कपूर अनोपम वास ।
चिहु दिसि दीसइ चित्र अनेक, मडप महल महा सुविवेक ॥ ३०५ ॥
तिहां आवी बेठो पतिसाह, मन महि आवइ अधिक उछाह ।

[बादशाह द्वारा पद्मिनी की दासियो का दर्शन]

पदमिणि पांहइं अधिक पडूर, दासी आवि दिखाडइ नूर ॥ ३०६ ॥
इक आवी बेसण दे जाइ, बीजो थाल मडावइ ठाइ ।
त्रीजी आवि धोवाडइ हाथ, चोथी ढालइ चमर सनाथ ॥ ३०७ ॥
दासी आवइ इम जू-जूई, आलिम मति अति विह्वल हुई ।
पदमिणि आ, कइ आ पदमिनी, सरिखी दीसइ सहु कामिनी ॥ ३०८ ॥
व्यास कहइ सभलि मुझ धणी, ए सहु दासी पदमिणि तणी ।
वार वार स्यु झबकु एम, पदमिणि इहां पधारइ केम ॥ ३०९ ॥
मुष्टि करी रहु साहि सुजाण, म हवु वलि वलि विकल अयाण ।
ए आवइ ते सगली दासि, प्रमदा पदमिणि तणी खवासि ॥ ३१० ॥
देखी दासी रभ समान, आलिम मनि अति हूउ गुमान ।
जेहनइ दासि अछइ एहवी, ते कहु आप हुसी केहवी ॥ ३११ ॥
व्यास कहइ सभलि सुलिताण, पदमिणि नारि तणा अहिनाण ।
झलकतो जाणे वीजली, कुदण - कति जिसी ऊजली ॥ ३१२ ॥
अंधारइ अजूआलु करइ, देखता त्रिभवन मन हरइ ।
परिमल कमल सरीखु तास, भूला भमर न छडइ पास ॥ ३१३ ॥
ते आवी छांनी किम रहइ, सुणि आलिम इम राघव कहइ ।
आलिम एम कहइ सुणि व्यास, धन्य धन्य ए सगली दासि ॥ ३१४ ॥
पदमिणि पासि रहइं नितु जेह, निजरि निहालइ पदमिणि देह ।
किण परि निजरि हुसी पदमिणी, व्यास कहइ सभलि मुझ धणी ॥ ३१५ ॥

उंचु दीसइ ए आवास, इहां छइ पदमिणि तणु निवास ।
रतनसेन राजा इहां रहइ, पदमिणि विरह इक खिण नवि सहइ ॥ ३१६ ॥

राघव वाक्यं

कवित्तं

लखदह लहइ पल्यग, सउडि सत लाख सुणिज्जइ ।
गालमसूरी सहस, सहस गंदूआ भणिज्जइ ।
तस ऊपरि दीवटी, मोलि दस लाखे लीधी ।
अगर कुसम पटकूल, सेजि कुंकम पुट दीधी ।
अलावदीन सुरिताण सुणि, विरह विथा खिण नवि खमइ ।
पदमिणी नारि सिणगार, करि राउ रतनसेन सेजइं रमइ ॥ ३१७ ॥

चोपई

अउर न देखइ पदमिणि कोइ, जो देखइ सो गहिलु होइ (११b) ।
पदमिणि पुण्यपखे क्युं मिलइ, जिणि दीठी नारी ग्रव गलइ ॥ ३१८ ॥

इम ते व्यास अनइ सुलितांण, वात करइं बे चतुर सुजांण ।

[पद्मिनी का झरोखे मे आकर बैठना और बादशाह का दृष्टिपात होना]

तिणि अवसर पदमिणि चीतवइ, देखुं असुर किसु इम चवइ ॥ ३१९ ॥

ततरइ जंपइ दासी एक, गउख हेठि बइठु सुविवेक ।
ते देखण गोखइ गजगती, आवी बेठी पदमावती ॥ ३२० ॥

जाली माहे जोवइ जिसइ, व्यासइं दीठी पदमिणि तिसइ ।
ततखिण व्यास वली वीनवइ, सांमी पदमिणि देखुं हवइं ॥ ३२१ ॥

रतनजडी देखु जालिका, ते माहे दीसइ बालिका ।
आलिम उंचुं जोइ जिसइ, परतिख दीठी पदमिणि तिसइ ॥ ३२२ ॥

अहो अहो ए कहु पदमिणी, रंभ कहुं कइ कहुं रुखमिणी ।
नागकुमरि कइ का किनरी, इंद्राणी आणी अपहरी ॥ ३२३ ॥

एहनुं रूप अनोपम एह, रूप तणी इणि लाधी रेह।
एहना एक अंगूठा जिसी, अवर नारि नहु दीसइ इसी ॥ ३२४ ॥

एहनी वात्त कहीजइ किसी, पदमिणि नारि हीया महि वसी।
मूर्छित चित्त हूउ पतिसाह, धरणि ढलइ वलि मेल्हइ धाह ॥ ३२५ ॥

व्यास कहइ संभलि नरराज, फोकट काइ गमाडु लाज।
धीर धरु साहस आदरु, अवर उपाय वली को करु ॥ ३२६ ॥

रतनसेन जु पांनइ पडइ, तु ए पदमिणि हाथइं चडइ।
इम आलोची मेल्ही वात, धीरपणा विण न मिलइ धात ॥ ३२७ ॥

मौन करी सहु जीमिउ साथ, भगति घणी कीधी नरनाथ।
फल फोफल देई तंबोल, माहोमाहि कीउ रंगरोल ॥ ३२८ ॥

चोआ चंदण अगर कपूर, करि कसतूरी केसर पूर।
माहोमाहि कीया छांटणा, ऊपरि दीधा वागा घणा ॥ ३२९ ॥

परिघल दीधी पहिरामणी, भगति जुगति अति कीधी घणी।
हाथी घोडा देई घणा, सतोष्या सगला प्राहुणा ॥ ३३० ॥

[भोजन के बाद बादशाह का गढ देखना और राजा रतनसेन से कपटपूर्ण विदा मांगना]

हिव इम जंपइ आलिमसाह, माहोमाहे साही बाह।
कोट दिखाडु अब हम भणी, हम आयां हूई वेला घणी ॥ ३३१ ॥

रतनसेन नृप साथइं थयु, कोट दिखाडण लेई गयु।
विसमा जे जे हुता ठोड, फेरि दिखायु गढ चीतोड ॥ ३३२ ॥

विषम घाट अति वांकु कोट, माहि न देखइ काइ खोट।
गोला नालि घणी ढीकली, कदही कोइ न सकइ नीकली ॥ ३३३ ॥

गढ देखता गब सहू गलइ, इसडु कोट कदे नवि मिलइ।
हिव इम जंपइ आलिमसाह, माहोमाहे अधिक उछाह ॥ ३३४ ॥

कामकाज कहयो हम भणी, तुम्ह महिमांनी कीधी घणी।
सीख दिउ हिव ऊभा रही, आलिमसाहि कहइ गहगही ॥ ३३५ ॥

भूप भणइ आघेरा चलु, जिम अम्ह जीव हुइ अति भलु।
एम कही आघु संचरिउ, गढथी बाहरि नृप नीसरिउ (१२a)॥ ३३६ ॥

नृप मनि कोइ नही वलवेध, खुरसाणी मनि अधिकु खेध।
व्यास कहइ ए अवसर अछइ, इम म कहेज्यो न कहिउ पछइ ॥ ३३७ ॥

[गढ से बाहर निकलते ही बादशाह द्वारा राजा रतनसिंह को बंदी बना लेना]

हलकारया आलिम असवार, माहोमाहि मिल्या जूझार।
रतनसेन झालिउ ततकाल, विलली वात हूई विसराल ॥ ३३८ ॥

साथि हता जे सुभट सनेह, तीया तणु तिणि कीधु छेह।
नरपति आणिउ लसकर माहि, जाणि कि सूरिज गिलीउ राहि ॥ ३३९ ॥

बेडी घालि बेसारिउ राउ, आलिम जुलम कीउ अन्याउ।
भूप हतु अति सबलु सही, अबल हूउ जव लीधु ग्रही ॥ ३४० ॥

सुणी सहू गढ माहे वकी, वात तणी विणठी वांनकी।
गढ माहे हूई हलकल घणी, साहे लीधु जव गढधणी ॥ ३४१ ॥

मिलीया सुभट दहोदिसि वली, सेना सगली गढ महि मिली।
मिलीया माणस टोलाटोलि, सबल जडावी गढनी पोलि ॥ ३४२ ॥

वीरभांण सुत सुभटा माहि, बइठु आवि ग्रही गजगाह।
माहोमाहि करइ आलोच, सबल हूउ गढ माहि सकोच ॥ ३४३ ॥

एक कहइ जूझा गढ माहि, एक कहइ दया राती वाह।
एक कहइ सामी साकडइ, जूझता किम टाणु जुडइ ॥ ३४४ ॥

एक कहई नही नायक माहि, विण नायक हतसेन कहाइ।
नायक विण सहु आल-पपाल, पूलइ बाधु जिसु पलाल ॥ ३४५ ॥

एक कहई मरवु छइ सही, मूआं गरज सरइ का नही।
सबलासु नवि थाइ सग्राम, जिण परि तिण परि न रहइ माम ॥ ३४६ ॥

इम आलोच करइं भट सहू, मन माहे भय हूओ बहू।

[पद्मिनी देकर राजा को छुडा लेने के लिए बादशाह का सदेश पहुंचाना]

ततरइ आंविउ इक परधांन, आलिमसाहि तणु असमांन ॥ ३४७ ॥

खबरि करावी आविउ माहि, एम कहइ छइ आलिमसाहि ।
हमकुं नारि दिउ पदमिणी, जिम हम छोडा तुम्हनु धणी ॥ ३४८ ॥

नहीतरि प्रांणइ लेशां सही, जु तुम्ह इण परि देशु नही ।
जु तुम्ह देशु हम पदमिणी, तु छूटेसी गढनु धणी ॥ ३४९ ॥

नहीतरि गढपति लीधु ग्रही, गढ पिण हेवइ लेशां सही ।
गढ लीधइ लीधी पदमिणी, हठीउ असिपति करसी घणी ॥ ३५० ॥

मरशु सुभट सहूं ससनेह, कइ हम सीख करु तुम्हि एह ।
एम कही ऊठिउ परधान, ततरइ बोल्या ते ससमान ॥ ३५१ ॥

वात विचारी कहशां अम्हे, तां लगि पडखु इक दिन तुम्हे ।
एम कही राखिउ परधान, सुभट करइं आलोच समांन ॥ ३५२ ॥

[गढवालो ने पद्मिनी देकर राजा को छुडा लाना स्वीकार किया]

कहु हिवइ परि कीजइ किसी, विसमी वात हूई ए इसी ।
जु ए देशां इम पदमिनी, तु पिण माम रहइ नही बिनी ॥ ३५३ ॥

विण दीधइ सहु विणसइ वात, पदमिणि विणि का न मिलइ धात ।
प्रांणइ ई ए लेशइ सही, जे इम आविउ छइ इहा वही (१२B) ॥ ३५४ ॥

प्रांणइ लेतां विणसइ घणु, न रहइ वासइ एको त्रिणु ।
नहीतरि जाशइ इक पदमिनी, अवर विणास हुइ नहु विनी ॥ ३५५ ॥

वीरभाण पिण पदमिणि दिसी, देतां होइ मन माहि खुसी ।
इणि मुझ मात तणु सोहाग, लेई दीधु दुख दुहाग ॥ ३५६ ॥

तिणि कारणि देतां पदमिनी, वलि मुझ मात हुइ सामिनी ।
वीरभाण समझावी कहई, पदमिणि दीधई सगलु रहइ ॥ ३५७ ॥

सगले सुभटे थापी वात, पदमिणि देशा हिव परभाति ।
इम आलोची उठ्या जिसइ, पदमिणि सहु सांभलीउ तिसइ ॥ ३५८ ॥

[सुभटो के प्रस्ताव से पद्मिनी की मनोव्यथा का वर्णन]

पदमिणि हेव हीइ खलभली, वात वुरी मइ ए सांभली ।
खंडु जीभ दहुं निज देह, पिण नवि जाउ असुरां गेह ।। ३५९ ।।
राजा इणि परि बंध्रे दीउ, वांसइ ए आलोचह कीउ ।
सगला सुभट हूआ सतहीण, हिव किण आगलि भाखु दीण ।। ३६० ।।
वखत इसु मुझ आविउ वही, सरणाई को देखुं नही ।
हिव जगदीस करीजइ किसु, देखुं संकट आविउ जिसु ।। ३६१ ।।

कवित्तं

दई पोलि छिटकाइ, भरचा गढ तुरकन भाया ।
अउर गई घड मडि, साथि लसकरो सवाया ।
आवत मिलीउ राउ, तव हि कोधी भुंजाई ।
त्रीस - सहस जुडि गया, साथो लसकरी सवाई ।
खाण खाइ ऊठिउ जब हि, पकड़ि बांह राजा लीउ ।
वातां ज करत लघाइ, पोलि रतनसेन काठु कीउ ।। ३६२ ।।

करे कटक अल्लावदी, आइ चीतोडि विलग्गु ।
वाचवध दे छलिउ, राउ भूलु मति भग्गु ।
करू मत्र मत्रीयां, राउ छोडावे लिज्जइ ।
जूझण भला न होइ, पलटि पदमावति दिज्जइ ।
तनु दहुं जीभ षडवि मरु, जोगिणीपुरपति न पेखसुं ।
पदमिणि नारि इम उच्चरइ, अब किस सरण उवेखस्युं ।। ३६३ ।।

[बाई सुणि इक बा (त) हूई बाजार सवारी ।
पदमिणि दच्यु पतिसाह दुरंग गढ राउ उवारी ।
खीमकर्ण भुजमत्र देल्ह पदमसी बयट्ठा ।
मिल्या पच पंचार सु (भ) ट सइ वल्य न दिट्ठा ।
चीतोड चोरास्या सवि जुडचा त (ां) नवि सरणा उवरूं ।
(न) वि रहुं से(जा) सुलिताण की अव हु जी ह खडवि मरूं ।।३६४ ।।]*

---

*छपी हुई पुस्तक मे पृष्ठ ५७ पर स० ३७५ वाला यह पद्य, मूल मे जोडने के लिए लेखक ने दाहिने ओर हांसिये पर लिखा । और इसके लिए अत मे 'ओली ७' लिखा जिसका मतलब पन्ने की ७वीं पंक्ति मे ३६३वें पद्य के बाद यह कवित्त जोड़ने का हैं ।

[वीर गोरा बादल के पास पद्मिनी का जाना और उनको सारी स्थिति समझाना]

चोपई

इण अवसरि हिव हूउ जेह, थिर मन करि नइ निसुणु तेह ।
तिणि पुरि गोरु रावत रहइ, खित्रवठ रीति खरी निरवहइ ।। ३६५ ।।

तसु भत्रीजु वादिल बाल, वेरी कद तणु कुद्दाल ।
ते बेही बहु बलना धणी, बेही राउत बेही गुणी ।। ३६६ ।।

राउ थकी रीसाणा रहइ, ग्रास न कांई नृपनु ग्रहइ ।
घरे रहइ न करइं चाकरी, रतनसेनि मुक्या परिहरी ।। ३६७ ।।

ते बेही जाता था जिसइ, गढरोहु मडाणु तिसइ ।
रूधइ गढि नवि जाइ तेह, जातां लागइ खित्रवटि खेह ।। ३६८ ।।

तिणि कारणि ते नवि नीसरइ, खरच-वरच पोतानु करइं ।
अग तणु न तिजइ अभिमांन, मांन विना नवि लाभइ मान ।। ३६९ ।।

खित्री ते जे खित्रवट धरइ, अपजसथी मनमाहे डरइ ।
रूधे जातां न रहइ मांम, करइं अहोनिसी नृपनुं काम ।। ३७० ।।

व्युही तीरइ अधिकु त्रेस, सामि-धरम पालइ सविशेष ।
गढनी लाज घणो निरवहइं, इणि परि ते ब्रे राउत रहइ ।। ३७१ ।।

हिव चिति चिंतइ इम पदमिणि, गोरा बादिल बेही गुणी ।
त्यासु जाइ करू वीनती, बीजां माहि न दीसइ रती(१३a) ।। ३७२ ।।

इम आलोची पदमिणि नारि, चडि चकडोलि पहूती बारि ।
साथइ लइ सखी परिवार, आवी गोरिलरइ दरबारि ।। ३७३ ।।

आगलि गोरु बेठु दिठु, तव तसु नयणे अमिय पयठु ।
गोरइ दीठी जब पदमिणी, तव ते हरषित हूउ गुणी ।। ३७४ ।।

गोरू सांम्हो धायो धसी, विनय करी इम बोलइ हसी ।
मात मया बहु कीधी आज, कहु पधारचा केहइ काजि ।। ३७५ ।।

आलसूआ मांहि आवी गंग, पवित्र हूआ मुझ अगण अग ।
वलतु बोलइ इम पदमिणि, हु आवी तुम्ह मिलवा भणी ।। ३७६ ।।

सुभटे सगले दीधी सीख, दया-धरमनी लीधी दीख ।
सीख दिउ हिव तुम्ह पिण सही, जिम असुरा घरि जाउ वही ।। ३७७ ।।

सुभट सहू हूआ सतहीण, खिति पुडि खित्रवट हूई खीण ।
सुभटे सगले दाखिउ दाउ, पदमिणि दे नइ लेशां राउ ।। ३७८ ।।

हिव तुम्ह सीख दिउ छउ किसी, सुभटे सगले कीवी इसी ।
गोरू जपइ सुणि मुझ मात, गढ माहे हु केही मात्र ।। ३७९ ।।

खरच न खाआं राजा तणु, पूछइ 'कोइ नही मत्रणु ।
पिण मनि आरति म करु मात, भली हुसी हिव सगली वात ।। ३८० ।।

जइ तुम्हि आव्या मुझ घरि वही, तु असुरां घरि जाशु नही ।
सुभट तणु ए नही संकेत, अस्त्री दे नइ लीजइ जेत्र ।। ३८१ ।।

वरि मरिवु सुभटांनइ भलु, जिण परि तिणि परि करिवु किलु ।
अस्त्री दे नइ लीजइ राउ, सुभट न थापइं एहवु दाउ ।। ३८२ ।।

जाण्या सुभट वडा जूझार, अस्त्री दे नइ ल्यइं भरतार ।
ते जीवी नइ करिशइं किसु, जिणे काम आलोच्युं इसु ।। ३८३ ।।

पदमिणि जंपइ गोरा सुणु, इणि वरि छाजइ ए मंत्रणु ।
सिरिखइ सिरखु सगले थाइ, भींत पखे नवि चित्र लिखाइ ।। ३८४ ।।

भीति सदाई झालइ भार, त्राटी वलि नइ थाइ छार ।
बीजा ऊभा मुंक्या सही, तु हु तुझ घरि आवी वही ।। ३८५ ।।

पद्मिनी वाक्यं

कवितं

तुंहि ज राउ गोरिल्ल, तुहि ज दल माहे वडु ।
तुंहि ज राउ गोरिल्ल, तुंहि ज मोरा प्रियअडु ।
तुंहि ज राउ गोरिल्ल, तुंहि ज दल बीडु झल्लइ ।
सुणि राउत गोरिल्ल, नारि पदमावति बुल्लइ ।
अवर सुहड़ सतहीण हूअ, जास लीजइ तइ एकलइ ।
अल्लावदीनसुं खग्ग वलि, रतनसेन छोडावि लइ ।। ३८६ ।।

[गोरा का पद्मिनी को लेकर बादल के घर जाना]

चोपई

गोरू जपइ सुणि मुझ माइ, गाजन हुतु मुझ वड भाइ।
तसु सुत बादिल अति बलवंत, तेह नइ पिणि जई पूछां मत ॥ ३८७ ॥

बेही आया बादिल दिसी, बादिल सांम्हो धायु धसी।
विनयवत पगि करीय प्रणाम, पूछइ बादिल केहु कांम ॥ ३८८ ॥

गोरू जपइ बादिल सुणु, सुभटे कीधु ए मत्रणु।
पदमिणि दे नइ लेशां राय, अवर न मडइ कोइ उपाय ॥ ३८९ ॥

पदमिणि आवी आपा पासि, हिव तु कासु कहइ विमासि।
तोनइ पूछण आव्या सही, करशां वात तुहारी कही ॥ ३९० ॥

सुभट स कोई बेठा फिरी, जूझण वात न ल्यइ आदरी।
आपेई पिण अछा उदास, राउ तणु नही ग्रास न वास ॥ ३९१ ॥

हिव तु जेम कहइ तिम करा, नीछउ देता(१३b)लाजे मरां।
आपे डीले छां दुइ जणां, आलिम आगलि लसकर घणा ॥ ३९२ ॥

किम जीपेशां कहु एकला, एकिला कदेई न हुवइ भला।
तिणि कारणि तो पूछण भणी, आविउ लेई हुं पदमिणी ॥ ३९३ ॥

पदमिणि बादिलसु वलि भणइ, सरणइ आवी हु तुम्ह तणइ।
राखि सकु तु राखु सही, नही तरि पाछी जाऊ वही ॥ ३९४ ॥
खडु जीह दहु निज देह, पिण नवि जाउ असुरा गेह।
लाखा जमहर करि नइ बलु, पिण नवि कोट थकी नीकलु ॥ ३९५ ॥

[पद्मिनी के सम्मुख राजा रतनसेन को छुडा कर लाने की बादिल की प्रतिज्ञा करना]

दूहा

इम सुणि बादिल बोलीउ, दूठ महा दुरदत।
जाणि कि गयवर गाजीउ, अतुल बली एकत ॥ ३९६ ॥

सुणि बाबा बादिल कहइ, सुभटासु कुण काम।
सुभट सहू सूए रहु, ए करस्युं हु- काम ॥ ३९७ ॥

काका थे कांइ कलकलु, अगि म धरु ऊताप।
तु हु बादिल ताहरू, सयल हरू संताप ॥ ३६८ ॥

पदमिणि आंगणि पग दीउ, पवित्र हूउ मुझ गेह।
महलि पधारू माउली, दुख म धरू निज देहि ॥ ३६६ ॥

आलिम भाजु एकलु, जु वासइ जगदीस।
तु हु बादिल बहसीउ, जु आणु अवनीस ॥ ४०० ॥

बीड़ु झालिउं बादिलइ, बोलइ इम बलवति।
आलिम गंजी आप बलि, आणु नृप एकत ॥ ४०१ ॥

सुभट सहू सूए रहु, सुभटासुं कुण काम।
ए सगला हु एकलु, निपट करूं निज नाम ॥ ४०२ ॥

बादिल बोलइ पदमिनी, मनि म करे ऊचाट।
तु हु गाजन जनमीउ, जु भजु गज-थाट ॥ ४०३ ॥

अरिदल गजु एकलु, भजु नृपनी भीड।
राम काजि हणमति कीउ, तिम टालुं तुझ पीड ॥ ४०४ ॥

सत्ति तुहारइ सामिणि, मली महादल मांन।
गढ माहे आणुं घरे, रतनसेन राजान ॥ ४०५ ॥

जोह सिड़ु ते जण तणी, दाखिउ जिणि ए दाउ।
पदमिणि साटइ पालटे, आणेशा धरि राउ ॥ ४०६ ॥

लूण ऊतारइ पदमिनी, बाला बादिल अगि।
बिरद बुलावे बादिला, इम जंपइ कणयगि ॥ ४०७ ॥

गोरू हिव अति गहगहिउ, सूरिम चडी सरीर।
कायर पूछ्या कपवइ, वीर वधारइ धीर ॥ ४०८ ॥

घरे पधारू पदमिणी, आरति म करू काइ।
बादिल बोल्या बोलडा, ते जूठा नवि थांइ ॥ ४०६ ॥

[बादिल की प्रतिज्ञा सुन कर उसकी माता का संताप करना]

चोपई

पदमिणि घरे पधारी जिसइ, बादिल माता आवी तिसइ ।
सुणीउ सगलु तिणि संकेत, हीया माहि न माइ हेत ॥ ४०९ ॥
नयण झरइ मुकइ नीसास, अबला दीसइ अधिक उदास ।
इणि परि आवो दीठो मात, विनय करी सुत पूछइ वात ॥ ४१० ॥
किणि कारणि तुं माता इसी, कहु वात मन माहे किसी ।
आरति चीत किसी तुझ भणी, काइ दीसइ आमण-दूमणी ॥ ४११ ॥
मात कहइ सुणि बादिल बाल, मा'डा कांइ पडइ जंजालि ।
दूध दही तु मुझ नइ एक, तो विण काइ न बीजी टेक ॥ ४१२ ॥
तु मुझ जीवन प्राणाधार, तो विण सूनु सहि संसार ।
तइं (१४a) ए कांइ कीउ मंत्रणु, वांसइ कासुं देखइ घणु ॥ ४१३ ॥
सुभट घणा गढ माहि समाज, त्यां बेठां तो केही लाज ।
ग्रास-वास को नही नृप तणु, आपें खरच करां आपणु ॥ ४१४ ॥
घणा जिके खाइ छइ ग्रास, सुभट रह्या छइ तेइ उदास ।
तु किणी कारणि हुइ अभ्फलखु, बिणठी बेला का नवि लखु ॥ ४१५ ॥
रणवट रीति न जाणु अजे, वात करी जाउ वजवजे ।
कदी कीया छइ तइं संग्रांम, अणजाण्या किम कीजइ काम ॥ ४१६ ॥
आलिम किणि परि गंज्यु जाइ, आटइ लूण किसा नइ थाइ ।
बादिल पुत्र अछइ तुं वाल, मत मुझ दुख दीइ अणगाल ॥ ४१७ ॥
परणिउ अछइ अजे तु आज, कहतां आवइ मन महि लाज ।
पहिली साझु घरनी वहू, किला करेयो पाछइ बहू ॥ ४१८ ॥
अजे अछइ तु बादिल बाल, कुसमकली जिम अति सुकमाल ।
म करसि वात विमास्या पखे, अति ऊछंछल थाउ रखे ॥ ४१९ ॥

[बादिल का माता को उत्तर देकर शान्त करना]

बादिल जपइ वलतुं हसी, माता वात कही तइ किसी ।
किणि परि बाल कहिउ मुझ माइ, पहिली मुझनइ ते समझाइ ॥ ४२० ॥

धूलि न चुंथुं रोउं हुं नही, आडा न करूं साडा ग्रही ।
थांन न चुखुं मुखि आंपणइ, पोढुं नही कदे पालणइ ॥ ४२१ ॥

कांइ कहइ तुं मुझनइ बाल, देखे जेम करूं घखचाल ।
राउ घणा उथापे थपुं, इसडइ कांमि किसुं ऊतपुं । ४२२ ॥

सीसि ऊडाडुं सगला सित्र, तु हुं जाणे ताहरू पुत्र ।
गाजन बाप सही गाजवुं, मत मनि जांणइ कुल लाजवुं ॥ ४२३ ॥

खित्रवटि रणवटि पाछउ खिसुं, तु तुं मात कहे मुझ इसुं ।
भिडतां पाछउ पग जु दीउं, तु तुझ माता फाटु हीउं ॥ ४२४ ॥

खलदल खंडि करूं दहवाट, तु तुं कांइ करई ऊचाट ।
म करसि माता मनि अणदोह, सगले आज वधारू सोह ॥ ४२५ ॥

गाजन आज करूं गाजतु, रणरस रंगि रमुं राजतु ।
सीह सिबद सुणि गय-घड जांइ, कायर वचन कहइ मुखि कांइ ॥ ४२६ ॥

कवित्तं

आइ माइ तिणि ठाइ, बइठ बादिल्ल पासि तस ।
तूय विण पुत्र निरास, तुंहि ज चालिउ जूझण कसि ।
नयण मोरू बादिल्ल, प्राण बादिल्ल भणावइ ।
वयण मोरू बादिल्ल, वारवारां समझावइ ।
आवती माइ तव पेखि करि, ऊठि बादिल सु प्रणाम कीय ।
बालक पुत्र जुगि २ जयो, कवण कुमंत्री मत्र दीय ॥ ४२७ ॥

बादिल वाक्यं

हुं कित बालु माइ, धाइ अंचलि नवि लग्गुं ।
हुं कित बालु माइ, रोइ भोजन नहु मग्गुं ।
हुं कित बालु माइ, धूलि, लिट्टुं न हु फिट्टुं ।
हुं कित बालु माइ, पाइ पालणइ न लुट्टुं ।
बालु रि माइ तइं क्युं कहिउ, अवर राइ रक्खविउ ।
सुरताण सेन विनडुं नहीं, तु तव हि माइ फट्टुहीउ ॥ ४२८ ॥

माता वाक्यं

रे बाला बादिल्ल, मनह आपणु न बुझसि ।
रे बाला बादिल्ल कुमर, कहि किसि मुहि जुझसि ।
गढ वीटिउ चिहु ठाइ, सूर निवसति खित्री वस ।
तुम्र विण(१४b)पुत्र निरास, तुंहि जा चलिउ जू झण कसि ।
इम कहइ माइ बादिल सुणि, वयणिक मोरू चित्त धरि ।
साहण समुंद्र सुलिताण दल, केम वछ अगमि सुभर ॥ ४२९ ॥

बादिल वाक्यं

हु कित बालु माइ, मेछ पांखां भरि खिल्लुं ।
हु कित बालु माइ, सपत पाताल हि पिल्लु ।
बालइ वासिग नाग, कांन्हि आणीउ भुजां बलि ।
बालइ जाजइ सूरि, सीस ग्रास दीध सांमि छलि ।
बालइ बलालि एतु कीउ, दुरयोधन बधवि लीउ ।
सुरताण सेन विनडु नही, तु तबहि माइ फुट्टो हीउ ॥ ४३० ॥

[माता का बादिल की बात से सतुष्ट न होकर उसकी पत्नी को उकसाना]

चोपई

सुतनु सूरपणु संभली, माता मन महि अति खलभली ।
मात वचन नहु मानइ रती, माता माहि गई विलवती ॥ ४३१ ॥

वात सहू वहूअरनां कही, जाई राखु निज पति ग्रही ।
मुझनी सीख न मानइ तेह, रहसी नेट तुहारइ नेहि ॥ ४३२ ॥

सज्जि सिणगार सजे साबता, पहिरी वस्त्र नवा फाबता ।
हाव भाव करि वचन विलास, जिण परि तिण परि घाले पास ॥ ४३३ ॥

एम सुणी वहूअर नीकली, झलकइ कति जिसी वीजली ।
सुकलीणी सझि सोल सिंगार, आवी जिहां छइ निज भरतार ॥ ४३४ ॥

रूपइं रंभ जिसी राजती, ललित वचन बोलइ लाजती ।
नयणे निरमल दाखइ नेह, सांमि धरमि साची ससनेह ॥ ४३५ ॥

कोमल कमल-वदन कामिनी, दीपइ दंत जिसा दामिनी ।

[बादिल की पत्नी का पति को समझाना]

हसित वदन बोलइ हितकरी, सामी वात सुणु माहरी ॥ ४३६ ॥

आलिम दूठ महा दुरदंत, कहि न किसी परि जूझसि कंत ।
अरि बहुला नइ तुं एकलु, कहु किसी परि करिशु किलु ॥ ४३७ ॥

वादिल वोलइ सुणि कामिनी, जो ए जंग करू जामिनी ।
गज बहुला नइ एक ज सीह, तु पिण नावइ तसु मनि वीह ॥ ४३८ ॥

मयगल माता मद वहु झरइं, सीह थकी किम नाठा फिरइं ।
सीह सदाई सांम्हो धसइ, वाढचउ ई नवि पाछु खिसइ ॥ ४३९ ॥

सुदरि बोलइ सामी सुणु, खोटु म करु ए मंत्रणु ।
करतां वात अछइ सोहिली, पिण ते वेला अति दोहिली ॥ ४४० ॥

वादिल वोलइ सुंदरि सुणउ, भय म दिखाडे मुझनइ घणु ।
कायर वात करइ हसि हसि, वेला पडीया जाइ खिसी ॥ ४४१ ॥

ते हुं पुरुष नही वादिलु, जो ए जिणि परि झालुं किलु ।
वलतु वनिता वोलइ वली, कंता वात न जाइ कली ॥ ४४२ ॥

हय हीसारव गज सारसी, प्रवल करइं मुंगल पारसी ।
गोला नालि वहइं ढीकली, न सकइ को पेसी नीकली ॥ ४४३ ॥

चोगडदा नितु चोकी फिरइं, शस्त्र घणा अरि अंगे धरइ ।
तिहां तुं पइसिसि किम एकलु, ए आलोच नही छइ भलु ॥ ४४४ ॥

वादिल बोलइ वलतु हसी, तइं ए वात कही मुझ किसी ।
हयवर गयवर पायक पूर, हेकणि हाकि करूं चकचूर ॥ ४४५ ॥

लाख सतावीस लसकर लूटि, केवीं सगला नांखु कूटि ।
माल घणु आणुं अरि मारि, तु मुझ माता झेलिउ भार ॥ ४४६ ॥

कंता जंपइ रहि हो कत, मुझ मन माहि न भाजइ भ्रंत ।
अजे न साझी छइ ते सेज, निज नारी सु न रमिउ हेजि(१५a) ॥ ४४७ ॥

कांम युद्ध नवि जाणइ करे, निज नारीथी नासइ डरे ।
बालक जेम अजे निकलंक, देइ न जाणइ अधरे डक ॥ ४४८ ।

ते तुं किणि परि जूझसि सही, वलतु बादिल बोलइ नंही ।
नारी जंपइ सुणि मुझ नाथ, मुझ तनि अजे न लायु हाथ ॥ ४४९ ॥
ते तु अरिदल भजसि केम, वलतुं बादिल जपइ एम ।

[वादिल का पत्नी को उत्तर देना और पत्नी का बादिल को उत्साह प्रदान करना]

सुणि सुदरि तुं म करे हेज, तिणि दिनि आविसु तुझनी सेज ॥ ४५० ॥
जिणि दिनि जीपिसु वयरी एह, ता लगि सेज न हेज न नेह ॥ ४५१ ॥
वलतु नारि पयंपइ वली, सूरिम सगलइ तनि ऊछली ।
भलइ भलइ स्वामी स्याबासि, भवि भवि हु छु थारी दासि ॥ ४५२ ॥
जिम बोलइ छइ तिम निरवहे, मत किणि वातइं जाइ ढहे ।
लाज म अणावे कुलि आंपणइ, सांमी झुबे साहसि घणइ ॥ ४५३ ॥
नेजइ घाउ करे मुझ नाथ, देखिसु हिवइ तुहारा हाथ ।
खडग प्रहार खरा चालवे, आयुध अंगि घणा जालवे ॥ ४५४ ॥
पाछा पाउ रखे रणि दीइ, मरण तणु भय माणे होइ ।
भलु भवाडे खित्री वंस, पुहवि करावे सवल प्रसंस ॥ ४५५ ॥
खलदल खेत्र थकी खेसवे, आयुध अंगइं राखे सवे ।
सुभटां माहि वधारे सोह, वाहे विकट छछोहा लोह ॥ ४५६ ॥
नाम करे नवखडे नाथ, वाहि सकइ तिम वाहे हाथ ।
सुभट सहू कहीइं सारिखा, परगट लाभइ इम पारिखा ॥ ४५७ ॥
जीवणि मरणि तुहारु साथ, हुं नवि मुंकु जीवन नाथ ।
घणु घणुं हिव कासु कहूं, तेम करे जिम हुं गहगहुं ॥ ४५८ ॥
भिडतां भाजी नासे मूउ, कायर कपि हूउ जू-जूउ ।
एहवा वचन सुण्या मइ कानि, तु मुझ लाज हुसी असमानि ॥ ४५९ ॥
कत कहइ सभलि कमिनी, हवइ सही तु मुझ सामिनी ।
बोल्या बोल भला तइ एह, निज कुलवटनी राखी रेह ॥ ४६० ॥
अस्त्री आणि दीया हथीयार, साझिउ सुभट तणु सिणगार ।
मिली हिली माता पग वंदि, असि चडि चालिउ बादिल भदि ॥ ४६१ ॥

[बादिल का राजसभा मे पहुँच कर रतनसेन के पुत्र वीरभाण आदि से मन्त्रणा करना]

गोरु रावत पूछी करी, चालिउ बादिम साहस धरी ।
सुभट सहू मिलीया छइ जिहा, बादिल चाली आविउ तिहा ॥ ४६२ ॥

बादिल बोलइ हसे इसु, कहु तुहे आलोचिउ किसु ।
सुभट कहइं बादिल संभलु, सबल मडाणु ए कलकलु ॥ ४६३ ॥

हठीउ आलिम अमली मांण, राजा साही लीधु प्रांणि ।
गढ पिण हेवइ लेसी सही, जे इहां आविउ छइ इम वही ॥ ४६४ ॥

पदमिणि दया तु छूटइ पास, नहीतरि गढनी केही आस ।
गढि जातइ कांइ नवि रहइ, वली करां हिव ज्युं तु कहइ ॥ ४६५ ॥

बादिल बोलइ भल मंत्रणु, कीउ तुम्हे आलोचिउ घणु ।
पदमिणि देगां आपें सही, पिण इक वात सुणु मुझ कही ॥ ४६६ ॥

छांटु पडसी सगलइ देसि, मस्तकि कोइ न रहसी केस ।
खित्रवट सहु लोपासी खरी, आ थें वात भली नादरी ॥ ४६७ ॥

भाडा सुभट मरइं गहगही, पिण निज मांण न मेल्हइं सही ।
मान पखे नर कहीइ किसु, कण विण ठाला कूकस जिसु ॥ ४६८ ॥

काया माया बे कारिमी, घडी एक बाकी घडी एक समी ।
कायर हुउ अथवा हुउ सूर, मरण किणइथी ने टलइ दूर ॥ ४६९ ॥

तु ते मरण समारी मरू, ढांढा होइ किसुं ऊगरू ।
पदमिणि दीधी कहीइ केम, पति राखणसुं जु छइ प्रेम ॥ ४७० ॥

वीरभाण इम निसुणी भणइ, बादिल बोलिउ तुं बलि घणइ ।
भाखी सहू भली तइं वात, पिण (१५b) नवि प्रीछइ तुं तिलमात्र ॥ ४७१ ॥

आलिम ईस तणु अवतार, लसकर लाख सतावीस लार ।
यवनी सुभट वडा जूझार, हणइ हेकीकु हेलि हजार ॥ ४७२ ॥

साही लीधु बलि सिरदार, जूझंतां आवइ तसु भार ।
काइ परि हिव पुहचइ नही, नहीतरि म्हे पिण जूझत सही ॥ ४७३ ॥

बादिल बोलइ कुअर सुणउ, ए आलोच नही आपणु ।
किसा आलोच करइ केसरी, मारइ मयगल माथइ धरी ॥ ४७४ ॥

इम करतां जू मूआ वली, तु पिण कीरति हुइ निरमली।
काया साटइ कीरति जुडइ, तु नवि मोलइं मुंहगी पडइ ।। ४७५ ।।

काया चांबतणी कोथली, खिण इक मेली खिण ऊजली।
तिण साटइ जु कीरति मिलइ, तु लेतां कुण पाछु टलइ ।। ४७६ ।।

[बादिल की बात सुनकर वीरभाण का प्रसन्न होना और बादिल का बादशाह के खेमे मे जाकर उससे वार्तालाप करना]

वीरभाण हिव बोलइ वली, बादिल तुझ मति अति निरमली।
अरजुण ते जे वालइ गाइ, करि जिम हिव तुझ आवइ दाइ ।। ४७७ ।।

राजा छूटइ पदमिणि रहइ, इणि वातइ कुण नवि गहगहइ।
बादिल वोलइ कुअर सुणु, करयो ऊपर वांसइं घणु ।। ४७८ ।।

हु जाउ छुं लसकर माहि, आवुं वात सहू अवगाहि।
करि जुहार बादिल असि चडिउ, साहसि सुरपति सांसइ पडिउ ।। ४७ ।।

गढनि पोलि हुई ऊतरिउ, बुद्धिवत बहु साहसि भरिउ।
निलवटि दीपइ अधिकु नूर, प्रतपइ तेज तणु घटि पूर ।। ४८० ।।

आयुध अगि सहू साबता, पहिरणि वस्त्र नवा फाबता।
आवइ एकलमल असवार, जाणे अभिनव अगनिकुमार ।। ४८१ ।।

आलिम दीठु ते आवतु, सुभट घणु दीसइ साबतु।
आलिम मेल्हया साम्हा दूत, पूछउ आवइ किम रजपूत ।। ४८२ ।।

दूते जाइ पूछिउ तेह, बोलइ बादिल अति ससनेह।
हू आविउ छुं करवा वात, पदमिणि आणि दीउं परभाति ।। ४८३ ।।

आलिम मांनइ मुझ मत्रणु, तु उपगार करूं हु घणु।
दूते जाइ धणी नइ कहिउ, इम सुणि आलिम अति गहगहिउ ।। ४८४ ।।

माहि तेडाविउ दे बहु मान, दीठु असिपति अति असमान।
तेज तपइ ब्यु हो तनि घणु, आलिमसाहि दीउ वेसणु ।। ४८५ ।।

बइठु बादिल बुद्धिनिधांन, असिपति पूछइ दे बहु मांन।
क्या तुझ नाम किणइ का पूत, अब किसका हई तू रजपूत ।। ४८६ ।।

क्युं अब आया हइ हम पासि, क्या हइ तुझकुं गढ महि ग्रास ।
बोलइ बादिल बलतुं हसी, रोमराइ सहु घटि ऊससी ॥ ४८७ ॥

अवसरि बोली जाणइ जेह, माणस मुहगु थाइ तेह ।
तिण परि बादिल तब बोलीउ, हरखिउ जिम आलिमनु हीउ ॥ ४८८ ॥

नाम-ठांम सहु निरता कह्या, माहोमाहि बिन्है गहगह्या ।
बादिल बोलइ आदर करी, सांमी बात सुणु माहरी ॥ ४८९ ॥

पदमिणि मेल्हिउ हुं, परधांन, सुभट न मेल्हइं निज अभिमांन ।
पदमिणि दीठो जब तुं द्रेठि, जीमंतु निज जाली हेठ ॥ ४९० ॥

तिणि दिनथी ते चिंतइ इसुं, कामदेव ए कहीइ किसुं ।
धन ते नारि तणु अवतार, जेहनइ आलिम छइ भरतार ॥ ४९१ ॥

विरह वियाकुल बेठी रहइ, निसि दिन सुहिणे तुझनइं लहइ ।
कर ऊपरिं मुख मेल्ही रहइ, नयणे नीर घणुं तसु वहइ(१६a) ॥ ४९२ ॥

निपट घणा मेल्हइ नीसास, अबला दीसइ अधिक उदास ।
तुझसुं कोइ हूउ अनुराग, रातु जाणि प्रवाली राग ॥ ४९३ ॥

पदमिणिनइ मनि अधिकु प्रेम, ते कहवाइ मइं मुखि केम ।
आलिम आलिम करती रहइ, मुझसुं बात सहू ते कहइ ॥ ४९४ ॥

तुझनु आविउ सुणि परधांन, तेह प्रतइं दीधु बहु मांन ।
सुभट कहइं म्हे मरशां सही, पिण म्हे पदमिणि आपां नही ॥ ४९५ ॥

समझाविउ मइ सुभट समेत, बीरभाण राजा जगजेत्र ।
क्युं क्यु आज ढबइ छइ बात, तिणि जाणां छां मिलसी धात ॥ ४९६ ॥

पदमिणि मेल्हिउ हुं तुम्ह भणी, विनय भगति बीनववा घणी ।
वली जिका होइ छइ बात, कहिस्युं आवी ते परभाति ॥ ४९७ ॥

सीख दिउ हिव मुझनइं सही, पदमिणि पासइ जाउं वही ।
जोती होसी मुझनी वाट, करती होसी अति ऊचाट ॥ ४९८ ॥

विरह विथा न सहइ विरहणी, काम पीड घटि चालइ घणी ।
तुझ संदेश सुधारस जिसा, पाउं तुं जई सुणाउं तिसा ॥ ४९९ ॥

[बादिल की बातें सुनकर अलाउद्दीन का काम-व्याकुल होना और बादिल के कथनानुसार कार्यवाही करने को राजी होना]

दूहा

असिपति इणि परि संभली, पदमिणि प्रेम प्रकास ।
वयण बाणि वीध्यु घणु, मनि मेल्हइ नोसास ॥ ५०० ॥

अलजु तनि अति ऊपनु, विलली विरह वराल ।
अवसर देखी आपणु, जागिउ काम जटाल ॥ ५०१ ॥

काम-बाण कुण सहि सकइ, दाझइ सगलु देह ।
सुंदरितणा सदेसड़ा, निपट वधारइ नेह ॥ ५०२ ॥

विरह-विथा सहि नवि सकइ, अलजु अंगि न माइ ।
प्रेम सुणी पदमिणि तणु, घट गलहल ज्युं जाइ ॥ ५०३ ॥

असिपति थु अहि सारिखु, साहि न सकतु कोइ ।
खीलिउ बादिल गारुडी, पदमिणि प्रेम परोइ ॥ ५०४ ॥

चोपई

बोलइ असिपति बादिल सुणु, तु अम्ह आज घरे प्रांहुणु ।
भगति जुगति तुझ केही करां, तइं दीठइ मन माहे ठरां ॥ ५०५ ॥

पदमिणिसुं हम करयो प्रीति, रूडी परि सहु भाखे रीति ।
जइ हम हाथि चडी पदमिणी, तु मुझ घरि तु होइसि धणी ॥ ५०६ ॥

सुभट सहू समझावे घणु, थिर करि थापे ए मत्रणुं ।
दूधड़ाग दिखलावे घणी, वात विहांणइ आवे वणी ॥ ५०७ ॥

एम कही निज करसु साहि, पहिराविउ बादिल पतिसाहि ।
लाख सुनईया दीधा सार, हयवर गयवर वस्त्र अपार ॥ ५०८ ॥

[बादिल का बादशाह से सम्मान पाकर खेमे से किले मे लौटना और आगे की तैयारी करना]

ते लेई बादिल आवीउ, हरषिउ माइ तणु तव हीउ ।
निज नारी रुलीयाइत थई, दिन आजूणू दीधू दई ॥ ५०९ ॥

गोरू रावत मनि गहगहिउ, करसी बादिल सगलु कहिउ ।
हरषित नारि हूई पदमिणी, उ मेलेसी सही मुझ धणी ॥ ५१० ॥

सुभट सहू संक्या मन माहि, बादिल अगइ अधिकी आहि ।
सिगति न छांनी राखी रहइ, बांधी अगनि हुइ तोई दहइ ॥ ५११ ॥

बादिल बइसि कीउ मत्रणु, कहु वात ते सगला सुणु ।
वि-सहस सज्ज करु पालखी, वात न जाणइ जिम को लखी ॥ ५१२ ॥

ऊपरि अधिक धरु उछाड, पागथीया वधु पटवाडि ।
दुइ दुइ सुभट रहु त्यां माहि, सहि संजूह घटे संबाहि ॥ ५१३ ॥

साचा शस्त्र घणा आदरी, बइसु मन महि साहस धरी ।
लारो-लारि करु पालखी, कहिस्यां माहे छइ तसु (१६b) सखी ॥ ५१४ ॥

विचि पालखी पदमिणि तणी, परठी सोभ करु तिणि घणी ।
साचउ पदमिणि तणु सिगार, ऊपरि थापु भमर गुंजार ॥ ५१५ ॥

तिण महि गोरू रावत रहु, वात रखे को वाहरि कहु ।
इक प्रतिबिंवु पदमिणि माहि, आलिम न सकइ जिम अवगाहि ॥ ५१६ ॥

छेको विचइ न राखु छतो, लारोलारि करु लागती ।
गढनी पोलि लिगावु लार, सेन समीपइ आणु पार ॥ ५१७ ॥

एम करी हिव तुम्हि आवयो, वेला बहुली पडखावयो ।
हुं विचि जाइ करेगुं वात, मेलिसु सगली धातइ धात ॥ ५१८ ॥

हु जाई आणिमु राजान, पुहचाडेशां नृप निज थान ।
पछइ करेगा सवलु किलु, ए आलोच अछइ अति भलु ॥ ५१९ ॥

सगले सुभटे थापी वात, परठु करता हूउ प्रभात ।
सीख सहू समझावी करी, चालिउ बादिल चचलि चडी ॥ ५२० ॥

[किले पर तैयारी करवा कर सुबह बादिल का वापस बादशाह के पास पहुँचना]

पहुतु तिमई ज लसकर माहि, जिहां वइठो छइ आलिमसाहि ।
जाई बादिलि कीउ सिलाम, हरषित हूउ असिपति तांम ॥ ५२१ ॥

बादिल साचा कहि संदेस, दिउ घणा जिम तुझनइ देस ।
बादिल वात कहइ परगडी, सांमी वात सिराडइ चडी ।। ५२२ ।।

सुभट सहू समझाव्या नीठ, पदमिणि आणी गढनइ पीठ ।
सुभट सहू भाखइ छइ एम, निसुणु सांमी वीनति तेम ।। ५२३ ।।

पदमिणिसु जु छइ तुम्ह कांम, तु हिव राखु मांमइ माम ।
ऊपाउ अम्हनि वेसास, पदमिणि आणां जिम तुझ पासि ।। ५२४ ।।

असिपति बोलइ वलतु एम, कहु वेसास हुइ तुम्ह केम ।
बादिल बोलइ साहिब सुणु, चलवु लसकर सहु तुम्ह तणु ।। ५२५ ।।

जु वलि बोहु तु असवार, तीरइ राखु सहस बि-च्यार ।
अवर सहू आघा चालवु, जिम वेसास हुइ अभिनवु ।। ५२६ ।।

एम सुणीनइ ऊतावलु, बोलइ आलिम अति वावलु ।
हमे हिवइं बीहां किण थकी, बादिल वात भली तइ बकी ।। ५२७ ।।

हुकम कीउ असिपति हुसीयार, कूच करायु लसकर सार ।
सहस बी-च्यारि रहु हम पास, हिंदुआना जिम हुइ वेसास ।। ५२८ ।।

लसकरीए जव लाधु दूअ, हरष घणु मन माहे हूउ ।
लसकर कूच कीउ ततकाल, चाल्या सुभट सहू समकाल ।। ५२९ ।।

साऊ-साऊ सहस बि-च्यार, असिपति पासि रह्या असवार ।
बोलइ आलिम बादिल सुणु, कहिउ कीउ हइ हमि तुम्ह तणु ।। ५३० ।।
वेगि अणावु हिव पदमिणी, पालु वाचा आपापणी ।
लाख सुनईया वलि तसु दीया, पहिराव्या वलि वागा दिया ।। ५३१ ।।

[बादशाह की सेना को दूर हटवा कर बादिल का किले पर लौटना]

ते लेई बादिल आवीउ, हरषिउ माइ तणु वलि हीउ ।
निज सुभटासु कीउ सकेत, हिव जगदीसइ दीधु जेत्र ।। ५३२ ।।
ले पालखी तुम्हि आवयो, लारोलारि खरी राखयो ।
मत किणि वातइं हुउ आखता, खित्रवट काइ न आंणिसु खता ।। ५३३ ।।

एम कही आघु संचरिउ, पालखीए पूठि परिवरिउ ।
दीठउ असिपति आविउ वली, बादिल वात कहइ निरमली (१७a) ।। ५३४ ।।

साहिब सांभलि मुझ वीनती, पदमिणि एम कहइ हितवती ।
हु आवी हिव सही तुम्ह गेह, साहिब हिव तुं हुए ससनेह ।। ५३५ ।।

साचु राखे मुझ सोहाग, मागु मान-मुहतसु राग ।
तुझ घरि हरम हजारा गमे, त्यासु पिण तु रगइ रमे ।। ५३६ ।।

पिणि सोहागिणी मुझनइं करे, जु आणइ छइ पदमिणि घरे ।
एम सुणी वलि आलिम कहइ, पदमिणि आफे आदर लहइ ।। ५३७ ।।

पदमिणि नारि तणु नख एक, ते सम नावइ नारि अनेक ।
पदमिणि कारणि मइ हठ कीउ, वाच लोपि राजा ग्रहि लीउ ।। ५३८ ।।

मुझ मनि खांति अछइ अति घणी, सामिणी होसी मुझ पदमिणी ।।५३९।।

अवर हरम सहु करसी सेव, पदमिणि जई पधरावु हेव ।
एम कही वलि बादिल भणो, परिघल दीधी पहिरामणी ।। ५४० ।।

[बादिल का बादशाह से वार्तालाप करके वापस आना और पालखी-स्थित सुभटों को सकेत करना]

ते लेवी बादिल आवीउ, हरषिउ माइ तणु वलि हीउ ।
सुभटां सु वलि भाषी वात, जई मेलु छुं धातइ धात ।। ५४१ ।।

तुम्ह सहू थाहरि रहयो इहा, वात रखे को काढु किहां ।
आविउ बादिल वलि असि चडी, नव-नव वात कहइ मनि घडी ।। ५४२ ।।

होठे बुद्धि वसइ जेहनइ, किसु दुहेलु छइ तेहनइ ।
वातां करता लावइ वार, फिरीउ बादिल वार बि-च्यार ।। ५४३ ।।

बोलबध सहि साचा कीया, लाख बि-च्यार सुनईया लीया ।
असिपति अति ऊतावली करइ, बादिल तिम-तिम मन महि ठरइ ।। ५४४ ।।

परगट आणि धरी पालखी, आलिम देखइ सहु सारिखी ।
बादिल वलि-वलि विच महि फिरइ, पदमिणिनइ मिसि वातां करइ ।।५४५।।

रहिउ पुहर दिन इक पाछिलु, लसकर ग्राघु गु ग्रागिलु।
किला तणी हिव वेला थई, तव वलि बादिल वोलइ जइ ।। ५४६ ।।

सांमी एम कहइ पदमिणी, मुझ ऊभां हुई वेला घणी।
मुझनी एक सुणु ग्ररदास, ज्यु हुं ग्रावुं तुझ ग्रावास ।। ५४७ ।।

रतनसेन मेलु इकवार, ज्युं मुझ ग्रधिक रहइ ग्राचार।
ग्रालिम बोलइ सुणि बादिला, पदमिणि बोल कहावइ भला ।। ५४८ ।।

इणि बोलइ हम हूग्रा खुसी, पदमिणि न्याइ कहीजइ इसी।

[बादिल का रतनसेन को कैदखाने से बाहर निकलवाना ग्रौर उसको पूरी स्थिति समझाना]

हुकम कीउ ग्रालिम ततकाल, छीडु रतनसेन भूपाल ।। ५४९ ।।

बादिल माहि छोडावण गयु, राजा रूसि ग्रपूठु थयु।
फिट रे ! बादिल मुह म दिखालि, सबल लिगाडी तइ मुझ गालि ।।५५०।।

वइरी वयर घणु तइ कीउ, पदमिणि साटइ मुझ नइ लीउ।
खित्रवट माथइ घाली खेह, नोसत सुभट हूग्रा निसनेह ।। ५५१ ।।

बादिल बोलइ सामी सुणु, ग्रवर कीउ छइ ए मत्रणु।
मुष्टि करी नइ ग्राघा चलु, भागि तुहारइ होसी भलु ।। ५५२ ।।

कवित्तं

कीउ कूड बादिल्ल, लेइ पालिखी पहुत्तु।
तसु महि रखिउ बाल, नाम पदमिणी दियतु।
हूउ हरष सुरतांण, जबहि सुणी ग्रावत नारी।
गोरी तब पूछीउ, बोल बोलइ विचारी।
ग्रल्लावदीन सु(१७b)णि बीनती, एक बात मोरी कलइ।
पदमिणि नारि इम उच्चरइ, एक वार राजा मिलइ ।। ५५३ ।।
वादिल तहां ग्रावीउ, राउ जिहां बघणि बद्धु।
ले मस्तक ग्रापणु, चलण ऊपरि तसु दिद्धु।
हूउ कोप राजान, वइर तइ सारिउ वेरी।
एह दईत लोभीउ, नारि काई ग्राणी मेरी।
वादिल्ल तांम मन महि हसिउ, कृपा करू सांमी सही।
वालक रूपि पदमावती, राउ नारि तोरी नही ।। ५५४ ।।

चोपई

प्रीछिउ भूप चलिउ ततकाल, आलिम बोलइ इम असराल ।
पदमिणि नइ मिलि आवु जाइ, जिम तुझ सीख दिउ सदभाइ ।। ५५५ ।।

राजा चालिउ पदमिणि भणी, सिवका श्रेणि घणी सांघिणी ।
राजा पेठु महि पालिखी, वात सहू तव साची लखी ।। ५५६ ।।

बादिल बोलइ सांमी सुणु, अवसर नही ए वातां तणु ।
एक थकी वीजी अवगाहि, गढ लगि जाउ सित्रिका माहि ।। ५५७ ।।

सांमी थाउ हीइ सचेत, माहि जइ करयो संकेत ।
साचु करयो ए सहिनांण, वाजावेयो ढोल नीसांण ।। ५५८ ।।

[रतनसेन का पालकी मे गुप्त रुप से बैठ कर किले पर पहुँचना और वहाँ से अपने सुभटो को संकेत देना]

एम सुणी राजा रंजीउ, हरष संपूरित हूउ हीउ ।
कुसले खेमे पुहतु माहि, जाणि कि सूरिज मुकिउ राहि ।। ५५९ ।।

कुसल तणा वाजा वाजीया, तव ते सुभट सहू गाजीया ।
नीकलीया नवहत्था जोध, वड दूसासण वहइं विरोध ।। ५६० ।।

सांमि कामि समरथ अति सूर, गोरू रावत अति हि गरूर ।
अरिदल देखी अति ऊससइं, सुभट सहू मन माहे हसइं ।। ५६१ ।।

सूरिम सगलइ तनि ऊछली, सोहइ सुभट तणी मंडली ।
साचा पहिरचा घटे सनाह, रूकहथा दीसइ रमिराह ।। ५६२ ।।

[पालकियों मे से सुभटो का निकल कर बादशाह को ललकारना और सेना पर टूट पड़ना]

च्यारि सहस नोसरीया सूर, एक इकइथी अधिकु कूर ।
आगलि गोरू वादिल बेउ, पूठई चाल्या सुभट सवेउ ।। ५६३ ।।

गाघरटइ दीसइं भट घणा, पार न लाभइ पुरुषां तणा ।
त्रूटे घाया ले तरवारि, हलकारे लागा हलकार ।। ५६४ ।।

रे रे आलिम ऊभु रहे, हिव नासी मत जाइ वहे।
पदमिणि आणीछइ अम्हि जिका, तोनइ हिवइ दिखाडा तिका ॥ ५६५ ॥

तोनइ खाति अछइ अति घणी, अम्ह ऊभा ते देवातणी।
हठीउ छइ तु करि हथीयार, हिंव आलिम मनि हू हूसीयार ॥ ५६६ ॥

एम कही नइ आव्या जिसइ, दीठा आलिम अरोयण तिसइ।
रणरसीउ ऊठिउ रमिराह, विणठी वात कहइ पतिसाह ॥ ५६७ ॥

रे रे कूड कीउ बादिलइ, आवु सुभट सहू हिव किलइ।
हलकारया असिपति निज जोध, धाया कलली करता क्रोध ॥ ५६८ ॥

माहोमाहि मडाणु किलु, बरवी बोलइ इम बादिलु।
पातिसाह मत छंडइ पाउ, जु तु अधिक अछइ रणराउ ॥ ५६९ ॥

तु आयु ढीलीथी धसी, हिव मत जाइ पाछु खिसो।
सूर अछइ तु करि संग्राम, नहीतरि रहसी नही तुझ मांम(१८a) ॥ ५७० ॥

आलिमना चडीया असवार, जिमदल सिरिखा जोध जुझार।
भिडइ भली परि भारथ भीम, सुभट न चापइ पाछो सीम ॥ ५७१ ॥

धसमस धूलि विधुसइ धरा, माहोमाहि भिडइ आकरा।
खेहाडबर ऊडिउ खरू, सूझइ सूर नही पाधरू ॥ ५७२ ॥

बाण विछूटइ बिहु दिसि घणा, वाजइ लोह घणा साघिणां।
खडग विछूटइ करता खीज. जाणि कि वादलि झबकइ वीज ॥ ५७३ ॥

सन्नाहे त्रूटइ तरवारि, तिणगा ऊडइ अधिक अपार।
अगनि झाल झलकइ असिधार, घन जिम हूउ घोरधार ॥ ५७४ ॥

खलक्या खलहल लोही खाल, पावसि जेम वहइ परनालि।
रज रुधाणो थयु प्रगास, गिरझिणि मस तणु ल्यइ ग्रास ॥ ५७५ ॥

पूरइ पात्र रुहिर जोगिणी, रुडमाल ल्यइ ईसर घणी।
झडवड झडप भरइ सीचाण, अबरि जोवइ अमर विमाण ॥ ५७६ ॥

सूरिज निज रथ खंची रहइ, रगति विगति नवि काइ लहइ।
इण अवसरि गोरू गजगाहि, धाई आविउ जिहा पतिसाह ॥ ५७७ ॥

मेल्हई खडग महाबल जिसइ, असपति अलगु नाठु तिसइ ।
बोलइ बादिल बे-कर जोडि, नासंतांरी न करु कोडि ।। ५७८ ।।

[रतनसेन का किले पर से युद्ध देखना और पद्मिनी का बादिल को आशिष देना]

रतनसेन राजा अति भलु, गढ ऊपरथी देखइ किलु ।
जोइ बादिल गोरा तणा, हाथ महाबल अरिगंजणा ।। ५७९ ।।

पदमिणि ऊभी दयइ आसीस, जीवे बादिल कोडि वरीस ।
धन्य धन्य बलिहारइ तूझ, तइं मुझ राखिउं सगलुं गूझ ।। ५८० ।।

सुभट घणा छइं ऊभा एह, ते सगला नीसत निसनेह ।
बादिल एक महाबल सही, सत्त थकी जे चूकु नही ।। ५८१ ।।

सामिधरमि साचु ससनेह, राखी बादलि रणवट रेह ।
गोरू रावत रणमहि रहिउ, आलिमासेन सहू लहु वहिउ ।। ५८२ ।।

लूटी लीधु लसकर सहू, के नाठा के मारचा वहू ।
इणि परि अरियण सहू एकलइ, वहसि करे जीता बादिलइ ।। ५८३ ।।

पातिसाह साही मुकीउ, इक वलि मोटु ए जस लीउ ।
साहि कहइ सभलि बादिला, किया पवाडा तइ अति भला ।। ५८४ ।।

जीवीतदान दीउ मुझ भणी, किसी करा हिव कीरति घणी ।
आलिमसाहि गयु एकलु, गोरइ बादलि जीतु किलु ।। ५८५ ।।

कवित्त

बादिल तहां ले चलिउ, राव अरि राव बत्रीसह ।
खडग काढि सनमुख, भिडिउ सुरतांण सरीसह ।
फरि पारसी मुगल्ल, तेण तहां कूड कमायु ।
लका मणि उद्धसिउ, तुरत अर तुरत सवायु ।
हाइ-हाइ करता ऊठीया, बादिल तहां सइ मुह सरिउ ।
जब लगइ जूझ दल विहुं हुउ, तब लगि हयवर पाखरिउ ।।५८६।।

[रतनसेन का किले पर से युद्ध देखना और पद्मिनी का बादिल को आशिष देना]

चोपई

जय-जयकार हूउ जस लीध, करणी बादिल अधिकी कीध ।
ऊघडीया गढना बारणा, बिरद हूआ बादिलनइं घणा ।। ५८७ ।।

राजा सांम्हो आविउ रंगि, मिलीया बेही अंगो-अंगि ।
महामहोछवि माहे लीउ, अरध देस बादिलनइ दीउ ।। ५८८ ।।

पदमणि वली पयंपइ एम, न करइ बादिल को तो जेम ।
तइ दीधु मुझ नइं अहिवात, सीतल कीधा तइ मुझ गात्र ।। ५८९ ।।

धन्य-धन्य तो माता सार, तूझ तणु जिणि झेलिउ भार ।
धन्य-धन्य ते नारी सार, जेहनइ बादिल छइं भरतार ।। ५९० ।।

मस्तकि तिलक करी सुविसाल, वद्धावइ मोती भरि थाल ।
निज भाई करि थाप्यु तेह, पुहचाडिउ बादिल निज गेह ।। ५९१ ।।

चुहटा माहि चिहुं पाखती, देखण नारि मिली आखती ।
ठोडि-ठोडि मोती ऊछलइं, सगा सणीजा आवी मिलइ ।। ५९२ ।।

इणि परि आविउ महल मझारि, वइरी-वरग घणा संघारि ।
जाइ लागु मातानइ पाइ, माता दयइ आसीस सुभाइ ।। ५९३ ।।

निज नारी ओढी नव घाट, लाबु तांणी तिलक ललाटि ।
अरघ आभोखु लेई करी, थाल भरी सांम्ही संचरी ।। ५९४ ।।

कीया विविध वधावा घणा, कुसले खेमे आव्या तणा ।

[गोरा वीर की पत्नी का बादिल से अपने पतिकी वीरता की बात पूछना]

हिव गोरानी अस्त्री कहइ, काकु केम रणगणि रहइ ।। ५९५ ।।

कहु किसी परि वाहया हाथ, किम सघारिउ शत्रु-संघाथ ।
बादिल बोलइ माता सुणु, किसु वखाण करूं ते तणु ।। ५९६ ।।

गोरइ दाहया गयवर घणा, पार न पामु सुभटा तणा ।
आलिमसाहि कीउ एकलु, इण परि गोरइ कीउ किलु ।। ५९७ ।।

तिल तिल छेदी तनु आपणु, अमरपुरी पुहतु प्रांहुणु।
कुल अजू आलिउ गोरइ आज, सुभटां तणी उवारी लाज ।। ५९८ ।।

कुंडलिया कवित्तं

गोरिल त्रीय इम उच्चरइ, सुणि बादिल ससमत्य।
मो प्रिय रण महि जूझतइ, काहि किम वाहृया हत्य।
कहि (किम वाहृया हत्थ) वत्थ दे सुहड पछाडिउ।
भांजीउ गयघड थट्ट पाउ दे सीस विभाडिउ।
सुहड सूर सहारि, जेण वहु कीधी घोरिल।
बादिल कहि सुणि मात, रणहि इम पडिउ गोरिल ।। ५९९ ।।

[गोरा की पत्नी का सती होना]

चोपई

एम सुणी नइ अस्त्री तेह, विकसित वदन हूई ससनेह।
रोमि-रोमि सूरिम उछली, मुलकी महिला बोलइ वली ।। ६०० ।।
संभलि वेटा हिव बादिला, ठाकुर दो'रा व्हइं एकला।
पछइ विचइं छेटो हुइ घणी, रीस करेसी मुझनइ घणी ।। ६०१ ।।
विहलु हू, हिव वार (म) लाइ, काकीनइ पुहचाडु ठाइ।
एम सुणी बादिल हरषीउ, धन्य-धन्य माता तुझ हीउ ।। ६०२ ।।
घणु वित्त ते विहची करी, करि सिंगार चढि तीखइं तुरी।
जय जय राम करी नीसरी, अगनि-सनांन कीउ सुंदरी ।। ६०३ ।।
पति पासइ जई पुहती जिसइ, अरधासण दीउ इंद्रइं तिसइं।
अमरपुरो पुहूता अवगाहि, जय-जयकार हूउ जग माहि ।। ६०४ ।।
विरद बुलावइ बादिल घणां, सांमिधरम सतवंतां तणा।
इसु न कोई हूउ सूर, त्रिहु भवणे कीधुं जस पूर ।। ६०५ ।।
पदमिणि राखी राजा लीउ, गढनु भार घणु झालीउ।
रण (१६a)वट करि नइ राखी रेह, नमो-नमो बादिल गुण-गेह ।। ६०६ ।

[कविका उपसहारात्मक कथन]

कवित्त

जय बादिल जय पत्ति, विरद बादिल अरि-गजरण।
संकट सांमि सनाह, ते जनाडउ गय-बधरण।
मालिउ गयदां माण, हण्या हत्थी मय - मत्तह।
आणिउ मोरु कत तुहि ज दीधु अहिवत्तह।
पदमिणी नारि इम उच्चरइ, तुम्ह सरिसु नहु अवर हूय।
आरती ऊतारहि वर तरुणि, जय बादिल जय पत्ति तूय ॥ ६०७ ॥

करि प्रपच बादिल्ल, नारि ऊगारी बलि छलि।
साहि न सकिउ सुरितांणि काजि जस एह भुजां बलि।
मलिउ गयदां माण, सांमि आणिय ऊवेलीउ।
भजि ढाल पाडिय सिलार, मलिकां दल मेलीउ।
इम सुण(वि माय आ)णद कीउ, पुत्रइ पर-दल पेलीउ।
उच्चरी वात बादिल्ल की, पदमिणि कंत ऊवेलीउ ॥ ६०८ ॥

*

[कवि हेमरतन का रचना के समय और स्थान आदि विषयक परिचय देना]

चोपई

बादिल राउतनी ए कथा, सुणता नावइ निज घटि विथा।
रोग सोग दुख दोहग टलइ, मनना सयल मनोरथ फलइ ॥ ६०९ ॥

पूनिमगछि गिरूआ गणधार, देवतिलक सूरीसर सार।
न्यानतिलक सूरीसर तास, प्रतपइं पाटइ बुद्धिनिवास ॥ ६१० ॥

पदमराज वाचक परधांन, पुहवो परगट बुद्धि-निधान।
तास सोस सेवक इम भणइ, हेमरतन मनि हरषइ घणइ ॥ ६११ ॥

संवत सोलइ-सइं पणयाल, श्रावण सुदि पंचमि सुविसाल।
पुहवी पोठि घणु परगडो, सबल पुरी सोहइ सादडी ॥ ६१२ ॥

पृथवी परगट रांण प्रताप, प्रतपइ दिन-दिन अधिक प्रताप ।
तस मंत्रीसर बुद्धिनिधांन, कावेड्यां कुलि तिलक समान ॥ ६१३ ॥

सांमिधरमि धुरि भांमुसाह, वयरी-वंस विधुंसण राह ।
तस लघु भाई ताराचंद, अवनि जाणि अवतरीउ इंद्र ॥ ६१४ ॥

ध्रूय जिम अविचल पालइ धरा, शत्रु सहू कीधा पाधरा ।
तसु आदेस लही सुभ भाइ, सभा सहित पांमी सुपसाउ ॥ ६१५ ॥

वात रची ए बादिल तणी, सांमिधरमि अति सोहामणी ।
वीररस सिणगार विशेष, रस बे सरस अछइ सविसेष ॥ ६१६ ॥

सुणतां सवि सुख संपद मिलइ, भणतां भावठि दूरइं टलइ ।
ऊजम अंगि हुइ अति घणु, मुहकम जाणइ करि मंत्रणु ॥ ६१७ ॥

षट सित षोडस गाथा बंधि, सुणिउ तिसु भाष्यु संबंध ।
अधिक ऊन जे हुइ उच्चरिउं, सयण सुणी ते करयो खरुं ॥ ६१८ ॥

सामिधरम पालंतां सदा, सगली आवइ घरि संपदा ।
सुर नर सहू प्रसंसा करइं, वरमाला लै लिखमी वरइ ॥ ६१९ ॥

इति श्री गोराबादिल-चरित्रे । बादिल-जयलक्ष्मी-वर्णनो
नाम प्रथमः खंडः ॥ संवत् १६४६ वर्षे मगशिर सुदि
१५ दिने श्री सादडी मध्ये । वा० हेमरत्नेन
लिखितं ॥ श्रीरस्तु ॥ कल्याण भूयात् ॥
मंगलाभ्युदयोस्तु ॥ (१९ b.)